होलकर हिन्दी ग्रन्थ-माला का १७ वां पुष्प

ग्राम संस्था।

लेखक—

शंकर राव जोशी नायब अमीन

कंजाड़ी हो. स्टे.

प्रकाशक

"श्रीमध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति"

इन्दौर

प्रथमावृत्ति १०००	१९२४	मूल्य प्रति पुस्तक १)

प्रकाशक—
"श्रीमध्य-भारत
हिन्दी-साहित्य-समिति"
इन्दौर

मुद्रक—
कपूरचन्द जैन,
"महावीर प्रेस"
किनारी बाजार
आगरा।

निवेदन ।

उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद हैं, जिस की सुकृपा से आज मैं यह पुस्तक हिन्दी संसार को भेंट करने में समर्थ हो सका हूं। इस पुस्तक में प्राच्य और पाश्चात्य ग्राम संस्थाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन किया गया है। कह नहीं सकता कि मुझे अपने इस प्रयत्न में कितनी सफलाता मिली है ।

न तो मैं इतिहास का विशेषज्ञ हूं और न इस विषय में मेरी उतनी गति ही है। तथापि राष्ट्र भाषा में इस प्रकार की एक आध पुस्तक का होना आवश्यक जान कर ही मैंने यह अनाधिकार चेष्टा की है। आशा है, एक आध इतिहासज्ञ इस विषय पर सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ लिखकर राष्ट्र-भाषा के भण्डार को इस त्रुटि को पूर्ण करने का श्रेय लेगा ।

यह पुस्तक मेरे दो तीन वर्ष के अध्ययन का फल है। कुछ अंगरेजी और मराठी तथा एक दो हिन्दी-पुस्तकों से, इस पुस्तक के लिखने में विशेष रूप से सहायता ली गई है। इसलिए मैं इन सब पुस्तकों के लेखकों और प्रकाशकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

इस पुस्तक के सर्वांग--सुन्दर प्रकाशित होने का सब श्रेय श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य-समिति के सुयोग्य मंत्री महोदय ही को है। और यदि होलकर्स हिन्दी कमेटी इस पुस्तक को स्वीकार न करती तो न जाने यह कबतक अप्रकाशित ही पड़ी रहती अतएव मैं श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति और श्री होलकर्स हिन्दी कमेटी इन्दौर [मध्य भारत] के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

मैं जानता हूं कि इस पुस्तक में अनेक त्रुटियां रह गईं हैं और ग्राम--संस्था के सभी अङ्गों पर सविस्तार विवेचन नहीं होपाया है। इसका एक मात्र कारण लेखक की अल्पज्ञता ही है। अतएव प्रार्थना करता हूं कि 'सन्त हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार' के न्यायानुसार अपने गुणों का परिचय देकर लेखक को उपकृत करेंगे।

वर्ष प्रतिपदा १९८१ }
कंजार्डा (होलकर स्टेट) }

विनीत—
शंकर राव जोशी

धन्यवाद ।

'ग्राम संस्था' पर हमारी राष्ट्र भाषा में एक भी पुस्तक न थी । और इसी लिए हमने इस पुस्तक को लिखने का साहस किया है । इस पुस्तक में हमने प्राच्य और पाश्चात्य ग्राम संस्थाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया है । हमें इस काम में कहांतक सफलता प्राप्त हुई है, इस बात को निर्णय करने का भार हम अपने सुज्ञ पाठकों पर ही छोड़ते हैं ।

हमें नीचे लिखी हुई पुस्तकों से विशेष सहायता मिली है अतएव इन पुस्तकों के लेखकों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हैं ।

१. Village communities in east and west by Sir H. Maine.
२. Village communities in the Deccan.
३. प्राच्य और पाश्चात्य ग्राम संस्था (मेन की पुस्तक का मराठी अनुवाद)
४. ग्राम-रचना (मराठी) लोक हितवादी कृत.
५. गांव गाड़ा (मराठी)

इसके अलावा कई अन्य पुस्तकों से भी सहायता ली गई है । स्थान स्थान पर इनका उल्लेख किया गया है । हम इन सब पुस्तकों के लेखकों और प्रकाशकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं ।

अन्त में, विद्वान पाठकों से नम्र निवेदन है कि यदि वे लेखक को त्रुटियां दिखा देंगे तो बड़ी कृपा होगी । और यदि कदाचित इसका दूसरा संस्करण छपाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो योग्य सुधार करा दिए जायंगे ।

इन्दौर
निर्जला एकादशी
१९७९

विनीत—

शंकरराव जोशी ।

॥ ॐ ॥

ग्राम संस्था
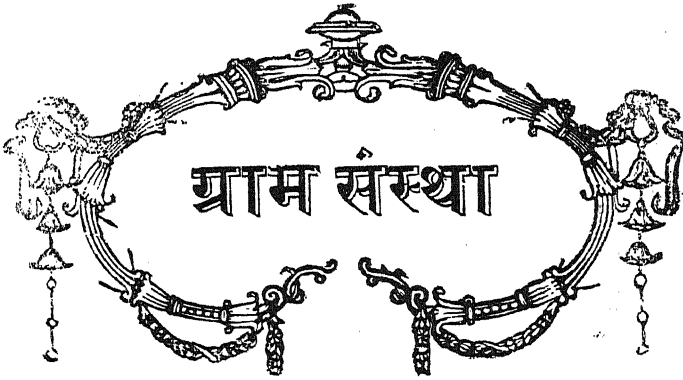
पहिला परिच्छेद।

विषय प्रवेश।

कानून, तत्सम्बंधी कल्पना, आचार·विचार आदि सामाजिक बातें बहुत ही अशाश्वत हैं। उन पर बाह्य उपाधियों का परिणाम अधिक होता है। वे अधिक तर व्यक्ति की इच्छा पर ही अवलम्बित रहती हैं अतएव उनमें जान·बूझ कर फेर·फार करना जरा कठिन है। सुधारना की कुछ स्थिति में

लोग अपने रूढ़ आचार-विचार बदलने को राजी नहीं होते, तथापि वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि नवीन नियम किस अवस्था में ग्रहण किए जाना चाहिएं हिन्दुस्तान में रूढ़ी विशेष अचल है। परंतु यहां भी सब आचार-विचार पवित्र और अविनाशी माने जाते हैं। स्मृतिपुराण आदि धर्म-ग्रंथों में "राजा कालस्य कारणम्" के समान शब्द पाए जाते हैं। तथापि यह भी स्पष्ट आज्ञा दी हुई है कि देशकाल भेद के अनुसार आचार व्यवहार में फेर बदल किया जा सकता है। परन्तु यह फेर-फार केवल राजा ही कर सकता है, उसी प्रकार भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न नियमों का अनुसरण करने की भी आज्ञा देदी गई है। कहा भी है—

कृतेतु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमः स्मृताः।
द्वापारे शंख लिखितः कलौ पाराशरः स्मृताः॥

ऊपर के श्लोक में यह स्पष्ट आज्ञा दी गई है कि भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न स्मृतियों का अनुसरण किया जाय।

हिन्दू लोग पुराने आचार-विचारों को चिटके रहने के आदी हैं। प्राचीन रूढ़ी को, चाहे फिर वह कितनी ही हानिकारक क्यों न हो, वे सहसा छोड़ने को राजी नहीं होते। ऋग्वेद (मं० ८ सू० ३० ऋ ३) में लिखा है—

तेनस्त्राध्वं तै वतत उनाधिवोचत ।
मा नः पंथः पित्र्यान्मानवादधि दूनं नैष्ट परावत ॥

अर्थात् तुम हमें तारो, हमारी रक्षा करो और हमें आशीर्वाद दो । मनू विहित और हमारे पूर्वजों द्वारा स्वीकृत मार्ग से हमें न हटाओ । वैसे ही वाममार्ग से हमें दूर रक्खो ।

इस से यह साफ़ मालूम होता है कि अति प्राचीनकाल से ही हिन्दू लोग 'पुराना सो सोना' मानते आए हैं । आज कल पाश्चात्यों के संसर्ग से हमारे अंगरेजी दां बाबू सब पुराने रीतरस्मों को एकदम मूर्खतापूर्ण और असभ्य मानने लगे हैं । और वे उन्हें त्याग कर पाश्चात्यों की रीतरस्म को अपनाने लगे हैं । इस से हमें लाभ हुआ है या हानि, इस बात पर यहां लिखना अप्रासंगिक होगा । हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि पाश्चात्यों की तड़क-भड़क और ऊपरी दिखावट से हमारे नवयुवकों की आंखें चकचौंधिया सी गई हैं । और इन्हीं लोगों ने उनके दुर्गुणों को ग्रहण किया है । तथापि अधिकांश भारतवासी—मूर्ख और असभ्य माने जाने वाले निरक्षर देहाती—आज भी उन्हीं रीत-रस्मों और आचार विचारों को पालते हैं, जिन्हें हजारों वर्ष पूर्व उनके पूर्वज पालते रहे थे ।

इन्हीं सब कारणों से भिन्न भिन्न देशों की रूढ़ियों में का साम्य देख कर अनुमान निकालने में विशेष सावधानी रखना चाहिये। फ्रीमन साहब ने स्विट्झरलैण्ड * देशमें फॉरेस्ट कैंटन में पाए जाने वाले प्राचीन ट्यूटॉनिक पद्धति पर स्थापित अवशिष्ट लोगसमूहों का पता लगाया है। ये बहुत महत्व के हैं। ये प्राचीन राजकीय संस्थाओं के नमूने हैं यहां के नियम सार्वजनिक कायदों में शामिल किए जासकते हैं। व्हैन मोरर साहब ने जरमनी में प्राचीन लोक समाजों का पता लगाया है। इस सम्बंध में आगे चलकर विचार किया जायगा।

व्यवस्थित और स्वतंत्र अनेक ट्यूटन कुटुम्बों का समुदाय एक विवक्षित ज़मीन के टुकड़े का मालिक होता था। वे इस भूखंड पर खेती कर उसके उत्पन्न से अपने उपजीविका चलाते थे। टासिटस ने जरमनी पर एक ग्रंथ लिखा है। उसमें उसने इसे 'ह्वायकस' नाम दिया है। इंगलैंड में भी प्राचीनकाल में भूमिस्वामित्व और राजकीय अधिकार ऐसे

---

* स्विट्झरलैण्ड २२ छोटे संस्थानों के संयुक्त होने से एक राष्ट्र बना है। प्रत्येक संस्थान अपनी अन्तर्व्यवस्था के लिये पूर्ण स्वतंत्र है। सर्व संस्थानों के प्रतिनिधियों की सभा ही राष्ट्र का राज्य शकट चलाती है। यहां प्राचीन ग्राम रचना शुद्ध रूप में पाई जाती हैं।

ही जनसंघों को प्राप्त थे। स्कैंडिनेवियन लोगो में भी किसी ज़माने में इन जनसंघों का अस्तित्व था। सर वाल्टर स्काट ने अपने रोज नामचे में लिखा है कि आर्क ने और शेटलैंड द्वीपों में भी उनका अस्तित्व था। इंगलैंड में इन लोकसमूहों के संयुक्त होजाने से एक बड़ा भारी प्रान्तिक राज्य बनगया और तव अनेक विघ्न वाधाओं के कारण इन 'मार्क' का महत्व घट गया।

ट्यूटन लोगो की 'टाउनशिप' का भारत वर्ष की ग्राम रचना से बहुत ही साम्य है उनमें थोड़ा बहुत फर्क तो अवश्य पाया जाता है और इसके कारण भी बताए जासकते हैं इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि वे अकस्मात ही पैदा होगए। ग्राममंडल दो प्रकार के होते थे—एक ही गोत्र के अनेक कुटुम्बों का समुदाय और २ सर्व साधारण भूमि पर स्वामित्त्व रखने वाले लोगों का समुदाय। कहीं कहीं दोनों प्रकार के ग्राम मंडलों का मिश्रण भी पाया जाता है। जमीन का बँटवारा सब जगह एकसा नहीं किया जाता था तथापि वह एक ही तत्वपर अवलम्बित था। औरइनमें पाई जाने वाली, लोगों के पारस्परिक बातें और कर्तव्यों की कल्पना समान ही है। जिन कारणों से यूरोप में 'मार्क' मानार में परिणत होगया वे भारत वर्ष में भी मौजूद थे किन्तु उनका परिणाम

बहुत कम हुआ और यही कारण है कि हिन्दू ग्रामरचना नष्ट नहीं हुई; अभीतक अस्तित्व में है।

मेन साहब का मत है कि भारत वर्ष को एक अखंड प्राचीन लोक समाज कहने की अपेक्षा अनेक छोटे छोटे समाजों का समुदाय कहना अधिक संयुक्तिक होगा। भारत वर्ष का प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति या समाज की रूढ़ियों का गुलाम होता है। इन रूढ़ियों के बंधन को तहस नहस करना एकदम असंभव है। यह निःसंदेह सच है कि भिन्न भिन्न समाजों की रूढ़ियों आर आचारों में फर्क पाया जाता है परन्तु उनमें उतना अन्तर नहीं है जितना कि पाश्चात्य देशों में स्त्री पुरुष के आचरण में पाया जाता है। भारतवर्ष में प्रचलित अधिकांश रीत रस्में समान महत्त्व की हैं। इस पर से यही सिद्ध होता है कि वे एक ही नमूने पर अस्तित्व में आई थीं। पाश्चात्यों का मत है कि भारत वर्ष की भिन्न भिन्न जातियों की रूढ़ियों के सादृश्य को देखते हुए मानना पड़ता है कि भिन्न भिन्न जातियों का उद्गम एक ही है। और यह बात दर असल में ठीक है। ऋग्वेद में नवें मंडल तक जातियों का नामोनिशान तक नहीं पाया जाता। ज्यों ज्यों आर्य जाति पूर्व की ओर बढ़ती गई उनकी सभ्यताकी भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। सबसे पहले जातियों का वर्णन ऋग्वेद के १० वें

मंडल में आया है । दसवें मंडल के ९० वें सू० में लिखा है ।

ब्राह्मणो मुख मासीत् बाहुभ्यो राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य तद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

परन्तु हमारी समझ से ऋग्वेद के जमाने में जाति भेद कर्म से ही माना जाता था, जन्म से नहीं यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यजुर्वेद के काल से जन्म से जाति भेद माना जाने लगा । तथापि इतना तो निर्विवाद है कि सब जातियों का उद्गम एकही है ।

सब देशों के समाज की उत्पत्ति एकाधिकृत कुटुम्ब व्यवस्था से ही हुई है । राष्ट्र सरकार, कानून आदि की कल्पना कालान्तर से ही पैदा हुई है । हिन्दू, रोमन, यहूदी तुर्की चीनी आदि आर्य और अनार्य लोगों में अति प्राचीन काल में प्रत्येक कुटुम्ब पूर्ण स्वतंत्र था । कुटुम्ब पर मुखिया को अनियंत्रित अधिकार रहता था । राष्ट्र, समाज, जाति आदि को लोक समूह के अवयव कह सकते हैं । हिन्दू धर्म शास्त्र कुटुम्ब व्यवस्था के पाए पर ही रचा गया है तथापि यह नहीं माना जा सकता कि वह मनुष्य समाज की आद्यस्थिति थी । सर जौन लबक, मैक्लेनन, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि तत्व-वेत्ताओं का भी यही मत है । एकाधिकृत कुटुम्ब का उदय

होने के लिये विवाह पद्धति और जायदाद की रक्षा की निश्चितताका होना बहुत जरूरी है । विवाहपद्धतिके अभाव में स्त्री पुरुष व्यवहार अनियंत्रित चलते रहते हैं। ऐसी अवस्था में सन्तति और कुटुम्ब के मुखिया का निश्चित करना एकदम अशक्य हो जाता है। विवाह पद्धति चार प्रकार की पाई जाती है। १ एक पत्नित्व २ बहुपत्नित्व ३ बहुपातित्व और ४ निर्बन्धाभाव । चौथे प्रकार की पद्धति केवल असभ्य जंगली लोगों में ही पाई जाती है । दूसरी हिन्दू मुसलमानों में वर्तमान है और तीसरी पद्धति टिबेट मलाबार आदि स्थानों में पाई जाती है । पहली दो पद्धतियां जिस समाज में प्रचलित हों, वही कुटुम्ब व्यवस्था का पाया जाना संभव है । जहां बहुपातित्व की पद्धति प्रचलित है वहां भी कुटुम्ब व्यवस्था पाई जाती है किन्तु ऐसे कुटुम्बों में स्त्री ही की प्रधानता रहती है । वंश की गणना एवं उत्तराधिकारी आदि माता की ओर से ही होते हैं । ऐसे समाज में मृतका वारिस पुत्र नहीं होता, वरन् भांजा होता है । कहा जाता है कि दक्षिण हिन्दुस्तान के नायर लोगों के तरवाड़ों में बहुपातित्व की चाल है और त्रावणकोर की गादी इसी नियम से चलती है । सारांश में पृथ्वी के सब सभ्य राष्ट्रों में कुटुम्ब व्यवस्था प्रारंभ होने के पहले ऊपर लिखे हुए सब भद्दे रवाज प्रचलित थे । कुटुम्ब को निश्चितरूप प्राप्त हुए बिना राज्य, कानून,

व्यवहार, धर्म, व्यापार आदि का उत्पन्न होना एकदम असंभव है और इसी लिए कुटुंब व्यवस्था सभ्यता का पाया माना जा सकता है ।

सर जॉन लबक,* और म्याक्लेनन+ साहब अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि मनुष्य प्राणी के सभ्यता की ओर पहला कदम बढ़ाने के पहले लोक समूहों में पशुतुल्य आचार प्रचलित थे । इन ग्रन्थकारों द्वारा प्रतिपादित जंगली रीतरस्म भारतवर्ष में भी पाए जाते थे । भारतवर्ष की जंगली जातियों में ये रीतरस्म अबतक प्रचलित हैं ।

जंगली लोगों को छोड़कर यदि हम भारतवर्ष की उनसे अधिक सुधरी हुई जातियों की ओर दृष्टिपात करें तो इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि अधिकांश कायदे एक नियंत्रित कुटुंब व्यवस्था से ही उत्पन्न हुए हैं । बहुत से कानूनों का उदय रोमन पित्र्यधिकार (Patria Polestas) से ही हुआ है ।

भारतवासियों का मुख्य धंधा खेती ही है । अतएव एकाधिकृत कुटुंब व्यवस्था ग्राममंडल के अवयव रूप में ही

---

* सर जॉन लबक कृत History of Civlization.

+ मैक्लेनन कृत Primitive Marriage.

पाई जाती है। इन्हीं ग्रामसंस्थाओं के कारण हिन्दुस्तान में कई जमीन संबन्धी कायदे पैदा होगये हैं। ट्यूटन लोगों की कृषक समूहों का रूपान्तर होगया है परन्तु यह रूपान्तर अपूर्ण है। और इसीलिये मंडलों का प्राचीन स्वरूप नष्ट नहीं हो पाया है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियां एवं टीकाकारों द्वारा निर्दिष्ट विधिसमूह ही भारतवर्ष का संकलित कायदा है। ये कायदे धर्म कल्पनाओं से आबद्ध हैं। सन्तानोत्पत्ति काम शान्त्यर्थ नहीं पुत्रोत्पत्तिके लिए की जाय। पुत्र मनुष्य का पुन्नाम नरक से उद्धार करता है और इसीलिए पुत्रीकी अपेक्षा पुत्र श्रेष्ठ माना गया है। सबसे पहले पुत्रकी उत्पत्ति मांगी गई। पुत्र पिताका पिंडश्राद्धादि करता है। इसलिए वही जायदाद का मालिक माना गया है। पुत्रके अभाव में दत्तक लेने की प्रथा है। पुत्रका महत्व बढ़जाने से स्त्रियां पतित और अपात्र मानी जाने लगीं।

प्रारंभसे संयुक्त कुलकी प्रथा थी। कह नहीं सकते कि विभक्त कुलकी प्रथा कब अस्तित्व में आई। मनुमहाराज ने विभक्त कुलकी प्रथा को महत्व देते हुए एक स्थान पर लिखा है—

प्रथाविवर्धते धर्म स्तमाद्धर्म्या प्रथक्क्रिया।

(मनु ९–१११)

इस श्लोकका मतलब यह है कि जितने ज़्यादा चूल्हे होंगे उतनी ही अधिक वैश्य देवादि क्रियाएं होंगी और पुण्य बढ़ेगा अतः भाइयों को जुदा ही रहना चाहिए।

मनुविहित स्मृति और उसके टीकाकारों के निबंध ग्रंथ पूर्ण से दीखते हैं किन्तु उनमें बहुत से कायदों का समावेश नहीं किया गया है और न उन कायदों का लोगों पर कुछ अमल ही है। प्राच्य देशोंके लोग विशेषतः स्थानिक रूढ़ियों का ही अनुकरण करते आए हैं। किन्तु अब अंगरेजी शिक्षा के कारण धीरे धीरे अंगरेजी कायदों का ज़ोर बढ़ता जा रहा है। अंगरेजी पढ़ेलिखे और पश्चिमी सभ्यता के पक्के उपासकों पर ही अंगरेजी कायदों का अधिक प्रभाव पड़ा है। अंगरेजी ढंगकी अदालतों के स्थापित हो जाने से स्मृतियों का प्रभाव कम हो गया है। तथापि अबभी स्मृतियों का प्रभाव भारतीय हृदयों पर नजर आता है।

पाश्चात्य शिक्षाके प्रभाव के कारण भारतीय जनता पाश्चात्य विचारों को ग्रहण करती जा रही है। हम दावेके साथ कह सकते हैं कि अंगरेजों के साहचर्य से भारत वासियोंकी मानसिक उन्नति होने के बदले अवनति होती जा रही है। कहा जाता है कि मनुस्मृति में सब हिन्दू धर्म विधिका संग्रह किया गया है किन्तु व्यवहार में स्मृति-निबंध-ग्रंथों का ही आसरा

लिया जाता है। टीका प्रतिटीका के कारण इन कायदों का खूब विस्तार हुआ है। और यही कारण है कि उनमें पुष्कल सुधार होगए हैं हिन्दू टीकाकारों ने शुद्ध व्यावहारिक नियमों को भी धार्मिक स्वरूप दे दिया है। तथापि यह बात बिलकुल सच है कि इन टीकाकारों ने इन व्यावहारिक नियमोंको अधिक स्पष्ट और न्याय संगत बना डाला है।

अंगरेजी न्यायपद्धति प्रारंभ होने के पहले प्राचीनकाल से हिन्दू शास्त्रों की स्वाभाविक वृद्धि उत्तरोत्तर होती आरही थी। परन्तु अंगरेजी न्यायपद्धति के प्रारंभ हो जाने से यह वृद्धि एकदम रुक गई। अतएव हिन्दू धर्म शास्त्रों का प्राचीन स्वरूप जैसा का तैसा रह गया। टीका कारों द्वारा प्राचीन स्मृति का पुनः पुनः विवरण होते रहने से धर्म शास्त्र जितना सुसंस्कृत और प्रशस्त होजाता है उतना भिन्न भिन्न मुकद्दमों के फैसले के अनुसार कायदों का विस्तार करने की अंगरेजी पद्धति से नहीं होता। कारण कि टीकाकार को कायदों का अपनी इच्छानुसार अर्थ लगाने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है कानून की भाषा कितनी ही सुनिश्चित और व्यक्त क्यों न हो किन्तु उसके अर्थ में फर्क करने की जगह रह ही जाती है। टीकाकार भिन्न भिन्न लेखकों के मत को देखकर किसी एक

लेखक की बात मान लेता है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में ऐसे विरोध बहुत भरे पड़े हैं।

अंगरेजी न्यायपद्धति से कानून का विस्तार नहीं होने का कारण यह है कि न्यायाधीश पर वकीलों के मत का कुछ कुछ प्रभाव पड़ता है। दर असल में अंगरेजी कानून को सुरक्षित बनाए रखने का काम न्यायधीश के जिम्मे नहीं है, वकीलों के जिम्मे है। वे कानूनों में बिलकुल फेर बदल नहीं होने देते। सूक्ष्मातिसूक्ष्म फेर बदल को देखकर तो मौन धारण कर लेते हैं किन्तु विशेष अन्तर नजर आते ही वे अपनी असम्मति दिखाकर उस अन्तर को वहीं रोक देते हैं।

सारांश में, लोगों की समझ है कि स्मृति संगृहित या लेखी धर्म शास्त्रों में ही सब कानूनों का समावेश कर दिया गया है। तथापि यह उनका भ्रम है। स्मृतियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि चतुर्वर्णों के पारस्परिक आचार विचार—विशेषतः विवाहाचार कुलाचार आदि सम्बंधी नियमों का सविस्तार वर्णन पाया जाता है। अविभक्त कुटुम्ब के स्वत्व सम्बंधी नियम, कुटुम्ब के विभक्त होजाने पर नियमों में होने वाला फेर बदल, कुटुम्ब के व्यक्ति का स्वोपार्जित द्रव्य पर अधिकार आदि से सम्बन्ध रखने वाले नियमों का ही

विशेषरूप से विवरण किया गया है। इकरार और अपराधों के सम्बंध में ही थोड़ा बहुत विवेचन किया गया है। तथापि अन्य कई विषयों पर एक अक्षर भी नहीं लिखा गया है। स्वामित्व और जमीनकी जुताई आदि में सहायता देने भूमि वाले व्यक्तियों के हकों के सबन्ध में अवश्य कहीं कहीं थोड़ा बहुत उल्लेख पाया जाता है। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि खेती जैसे बड़े महत्व के विषय में इन स्मृतियों में कुछ भी लिखा नहीं पाया जाता। प्राचीनकाल में खेती ही देशकी सच्ची सम्पत्ति थी। और धर्म शास्त्रों में लिखे हुए धार्मिक और समाजिक आचारों पर से भी यही सिद्ध होता है। कि खेती ही लोगों का मुख्य धंधा था।

खेती ही लोगोंका रोजका व्यवसायथा और यही कारण है कि ग्रंथोंमें तत्सम्बंधी नियम नहीं पाए जाते, एक महाशय ने शास्त्रकी यों व्याख्याकी है—"अलौकिकार्थ प्रति प्रादक——शास्त्रं"। अर्थात् शास्त्रोंमें वही बात लिखी जाती है जो सर्व साधारण नहीं जानते। दूसरे देश भेद और काल भेदके अनु-सार रूढ़ियां भी बदलती रहती हैं। अतएव उनसे सम्बन्ध रखने वाले सार्वत्रिक और त्रिकाला बाधित नियम नहीं बनाए जा सकते। और यही कारण है कि धर्म शास्त्रों और स्मृतियों में रोजके व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है।

धर्म शास्त्रों में देशीय आचार विचारों का विवेचन नहीं किया गया है । अतएव स्थानिक रूढ़ि संग्रह लिखे जाने की भी प्रथा थी । ऐसे कई संग्रह पाए भी जाते हैं । जैन और लिंगायतों के कायदे हिन्दू कायदों से भिन्न हैं । मालाबार में 'मरुमकटयम्' और 'कानड़ा में' 'अल्पसन्तान' नामक स्वतंत्र रूढ़ी मूलक कायदों के संग्रह पाए जाते हैं । लंकाद्वीप के उत्तरी किनारे पर रहने वाले तामील लोगों की रूढ़ियों का संग्रह 'थेसावालेम' नाम से उपलब्ध है । दक्षिण भारतवर्ष में रहने वाले तामील लोगों के व्यवहार भी उसी के अनुसार चलते हैं ।

ब्राह्मण ही धर्मशास्त्र के कर्ता थे । अतः देशाचार के अनुसार उन में भेद पाया जाता है तथापि बारीकी से देखा जाय तो यह भेद बहुत ही सूक्ष्म जान पड़ेगा । उनका साधारण स्वरूप एकसा दीख पड़ेगा । हज़ारों वर्षों से ये आचार विचार ज्यों के त्यों प्रचलित हैं । इसका कारण यही है कि लोगों में हमेशा इनका उदापोह होता रहा है । लोक समाज कितना ही न्यूनाधिक संस्कृत क्यों न हो किन्तु मनुष्य स्वभावतः ही विचार करने वाला प्राणी है । अतएव उसे विचार करने के लिए एक न एक विषय की जरूरत होती है । हिन्दुस्तानी लोग गरीब और अज्ञान हैं तथापि उनकी

का सारांश मात्र है। हम जानते हैं कि हिन्दू कायदों की उत्पत्ति के सम्बंध में यहां कुछ लिखना अप्रसंगिक है तथापि हमने यह परिच्छेद इसी उद्देश्य से लिखा है कि पाठकों को स्मृति आदि के सम्बंध में कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय।

परिच्छेद दूसरा

पाश्चात्य ग्राम संस्था ।

अति प्राचीन काल में भूमि पर सर्व साधारण का ही अधिकार था। प्रजा ही जमीन की मालिक समझी जाती थी। परन्तु बाद में धीरे धीरे भिन्न भिन्न देशों की परिस्थिति बदलती गई और परस्थिति के साथ ही साथ शनैः शनैः व्यक्ति स्वातंत्र्य की जड़ जमने लगी। यूरोप खंड की स्लैव* जातियों में भिन्न भिन्न प्रकार का संयुक्त—स्वामित्व

---

* सार्बिया, पोलंड, आस्ट्रिया के पूर्वी भाग और रशिया के पश्चिमी भाग के निवासी 'स्क्लावोनिक' जाति के हैं। यह आर्य लोगों की ही एक शाखा है प्राचीन काल में ये लोग निरे जंगली थे। अतएव उनके पड़ोसी सभ्यराष्ट्र रोमन और ग्रीक-इन्हें स्लैव कहा करते थे। धीरे २ इस जाति का यही नाम पड़ गया।

दृष्टि गोचर होता है। ट्यूटन लोगों की समाज स्थिति और स्लैव लोगों की समाजा स्थिति में बहुत कुछ साम्य है।

मोरियर साहब ने अपनी System of Land tenures in various countries नामक पुस्तक में एक उत्तम निबंध लिखा है। आप अंगरेज सरकार के एलची की हैसियत से कई वर्षों तक जरमनी में रहे थे। आपने उक्त ग्रंथ में जरमनी का प्राचीन सर्व साधारण स्टेटों का अच्छा वर्णन किया है। हम आपके इस निबंध का आशय नीचे देते हैं।

प्राचीन काल में जरमनी में, प्रत्येक वर्ग या समूह में अनेक कुटुम्ब सम्मिलित रहते थे। प्रत्येक वर्ग अपने २ अधिकार की जमीन तीन भागों में विभक्त कर कुटुम्बों में बांट देता था। ये तीन भाग थे १—गांव से व्यापी हुई भूमि या वह जमीन जिस पर गांव बसाया जाता था, २—सर्व साधारण भूमि अर्थात् वह जमीन जो जोती बोई नहीं जाती थी और ३—कृषियोग्य भूमि या वह जमीन जो जोती बोई जाती थी।

गांव के अधिकार की जमीन पर ग्राम वासियों का समान

अधिकार रहता था। कृषियोग्य भूमि अनेक भागों में विभक्त कर हर एक कुटुम्ब को एक एक भाग दिया जाता था।

प्रत्येक कुटुम्ब पर कुटुम्ब के मुखिया का-ज्येष्ठ व्यक्ति का, पूर्ण अधिकार रहता था। मुखिया ही कुटुम्ब का राजा होता था। कुटुम्ब के व्यक्तियों पर उसका अनियंत्रित अधिकार रहता था। कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य्य था। मुखिया की आज्ञा बिना कुटुम्ब के व्यक्तियों के सिवा, किसी दूसरे व्यक्ति को घर की सीमा के अन्दर पैर रखने का अधिकार न था। कुटुम्ब के लिए नया कायदा बनाने एवं गांव के कायदे को कुटुम्ब में अमल में लाने का सब अधिकार मुखिया को ही प्राप्त था।

भारत वर्ष में भी करीब करीब यही प्रथा अब तक जारी है। पिता या ज्येष्ट भ्राता अथवा कुटुम्ब का एक आद्य ज्येष्ठ पुरुष ही कुटुम्ब का कर्ता धर्ता एवं विधाता होता है। कुटुम्ब के व्यक्तियों पर उसी का अधिकार रहता है। पाश्चात्यों के संसर्ग से अब यह नियम ढीला पड़ गया है, तो भी कहीं २ यह नियम अब भी पाला जाता है। इस

नियम की अवहेलना होने पर कुटुम्ब के मुखिया का पारा एक दम बहुत ऊपर चढ़ जाता है और तब घर में कलह का बीज अंकुरित होने लगता है। अस्तु।

यद्यपि कुटुम्ब पर मुखिया का अनियंत्रित अधिकार रहता था तथापि अन्य कुटुम्ब नायकों के साथ उसका बराबरी का नाता रहता था। रूढ़ी किंवा आचार मूलक कायदों का कुटुंब की अन्तर्व्यवस्था पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था। रूढ़ी का मुख्य उद्देश एक कुटुम्ब का दूसरे कुटुम्ब से एवं मंडल से नियमित सम्बंध बनाए रखना ही था।

मुखिया के सर्व साधारण भूमि सम्बन्धी अधिकार अन्य कुटुम्बों के अधिकारों से मर्यादित रहते थे। यदि भूमि स्वामित्व सर्व साधारण स्वामित्व ही था। कृषियोग्य भूमि पर कुटुम्ब का पूर्ण अधिकार रहता था। एक अधिकारी नियुक्त किया जाता था जिसका मुख्य काम चरनोई और परती जमीन पर देख रेख करना और हिस्से दारों के हकों की रक्षा करना ही था। खेती करने के लिए बांटी हुई जमीन प्रारंभ में सर्व साधारण जमीन में से विभक्त करके ही बांटी

गई थी । यह सर्व साधारण जमीन गांव के आस पास की जमीन या गांव के अधिकार की बंजड़ जमीन ही होती थी । कृषियोग्य भूमि और सर्व साधारण भूमि के दो भेदों पर से ही धीरे धीरे व्यक्तिस्वातंत्र्य का अस्तित्व हुआ था । टयूटन लोगों में मंडल के अधिकार की जमीन हमेशा तीन भागों में विभक्त की जाती थी । फसल के फेर बदल के उद्देश से ही जमीन तीन हिस्सों में बांटी जाती थी । प्रत्येक खेत हर तीसरे साल परती रखा जाता था ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कृषियोग्य भूमि तीन भागों में विभक्त की जाती थी । हर एक कुटुम्ब को हर एक हिस्से में से एक एक टुकड़ा खेती करनेके लिए दिया जाता था । कुटुम्ब का मुखिया अपने स्त्री बच्चों की सहायता से उन्हें जोतता बोता था । तथाति उसे वही फसल बोना पड़ती थी, जो अन्य हिस्सेदार बोते थे । दूसरों के साथ उसे भी अपना हिस्सा परती रखना पड़ता था । एक नियम यह भी था कि उसके किसी कृत्य से परती जमीन या खेती बाड़ी की जमीन पर पशु चराने वाले उसके साथियों को किसी प्रकार का

कष्ट या नुक़सान न पहुंचना चाहिये। जुताई बुवाई के नियम भी बड़े कड़े थे। और यही कारण है कि ज्यों २ व्यक्ति स्वातंत्र्य का अस्तित्व होने लगा, त्यों २ जमीन का कायदा भी धीरे २ प्रचार में आने लगा। किन्तु यह कहा जा सकता है कि जिस जमाने में जमीन के टुकड़े खेती के लिए बांटे जाते थे। उस जमाने में भी यह कायदा रूढ़ी के रूप में अस्तित्व था। बहुत ही कम कुलाचार प्रचलित थे। परन्तु मनुष्य थोड़े नियमों से सन्तुष्ट होने वाला प्राणी नहीं है। तथापि कुटुम्ब नायक के अनियंत्रित अधिकारों के कारण थोड़े नियमों से भी काम चल सकता था। बीसवीं सदी की दृष्टि से प्राचीन कायदे अपूर्ण से नजर आते हैं। परन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जितने विषय इन कायदों में सम्मिलित किए गए हैं उन से सम्बन्ध रखने वाले तुच्छ से तुच्छ नियम भी पूर्ण रूपेण लिखे गये हैं। आयर्लैंड के* कायदों को ही ले लीजिये। इन कायदों में

* आयर्लैंड कायदे को 'ब्रेहानलॉ' कहते हैं। ब्रेहान लोग भारतीय ब्राह्मणों के समान निराले वर्ग के हैं। धर्म, विद्या, कायदा आदि से सम्बन्ध रखने वाले सब काम इन्हीं के जिम्मे थे। इस कायदे में वर्णित रूढ़ियां भारतीय रूढ़ियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

बहुत थोड़े विषयों पर विचार किया गया है, तथापि तुच्छ से तुच्छ नियमों की संख्या देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

टयूटन लोगों में खेती करने के लिए दी हुई जमीन अदली बदली जाती थी। प्रारंभ में जमीन उतने ही हिस्सों में बांटी जाती थी जितने कि स्वतंत्र कुटुम्ब होते थे। और सब प्रत्येक कुटुम्ब को एक एक टुकड़ा दे दिया जाता था। मंडल में के प्रत्येक कुटुम्ब के हक बराबर रखने के लिये जमीन बारबार बांटी जाती थी। इस समय इन ग्राम मंडलों को संयुक्त स्वामित्व और व्यक्ति स्वामित्व की बीच वाली अवस्था प्राप्त हो गई थी अर्थात् मंडल संयुक्त स्वामित्व की अवस्था पार कर चुके थे एवं व्यक्ति स्वामित्व के लिए यत्नशील हो रहे थे। किन्तु अभी तक उस अवस्था तक पहुंच नहीं सके थे। धीरे धीरे बार बार बँटनी करने का नियम बंद सा हो गया और हर एक टुकड़े पर कुटुम्ब का पूर्ण स्वामित्व स्थापित हो गया। तथापि रूस में यह प्रथा अब भी कहीं कहीं प्रचिलित है।

यहां रूसकी इस प्रथा पर सविस्तार लिखना अप्रासंगिक

न होगा। भारत के समान रूस में भी ग्राम मंडल की व्यवस्था अति प्राचीन काल से जारी है। रूस में ग्राम मंडल को 'मीर' कहते हैं मीर और भारतीय ग्राम मंडल में पुष्कल साम्य है। मीर को गांव के आस पास की जमीन में से कुछ हिस्सा दिया जाता था। चरतोई ही हर साल बांटी जाती थी। खेती बाड़ी की जमीन कइ वर्षों में बांटी जाती थी। भारत वर्ष और पश्चिमी यूरोप में थी यह प्रथा प्रचलित थी। इंगलैड का 'लामास' नामक तिवहार भी इसी का द्योतक है।

मोरियर साहब अपने निबंध में लिखते हैं—

"टयूटन लोगों में ज्यष्ठ पुरुष ही कुटुम्ब का मुखिया होता था। वही घर का मालिक होता था। गांव के काम काज में दूसरों के समान वह भी एक साधारण आदमी माना जाताथा। टयूटन लोग व्यक्ति स्वातंत्र्य आप्रियता और सहकारिता के सच्चे भक्त थे।"

पालग्रेव, कैम्बेल और फ्रीमन के ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि इन विद्वानों द्वारा वर्णित भूस्वत्व प्रकार और मोरियर साहब के वर्णन में कुछ समानता है यह प्राचीन

स्वत्व प्रकार जरमनी में खूब फैला हुआ था। कहीं कहीं उसके चिन्ह अब भी विद्यमान हैं। हाउस आफ कामन्स की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए, ब्लमायर साहब ने भी, इस पद्धति का वर्णन किया था। आपका मत है कि यूरोप में, सैनिक सेवापद्धति (फ्यूडल सिस्टम) प्रारंभ होनेके समय या नार्मन विजय के समय इंगलैंड में सरकार ने सब जमीन जप्त करली और तब उसे अपने आश्रितों में बांट दी। उन्होंने कुछ जमीन अपने अधिकार में भी रखली थी। फ्यूडल सिस्टम से उत्पन्न हुई अन्य रूढ़ियां पूर्व काल ही से चली आरही हैं।

प्राचीन ट्यूटन ग्राम मंडल के अधिकार की जमीन के खेती बाड़ी के भाग न्यूनाधिक परिमाण में सर्वत्र पाए जाते हैं।इनके नामभी भिन्न२होतेथे खेतीबाड़ी की जमीनको'कामनेबल' (मिश्र भूमि)चरागाहको'लामास'नाम दिए गए थे।सर्व साधारण जमीनके तीन लम्बे हिस्सेकर बीच में हरी मेंडें रखी जातीथीं। इन मेंडों पर भिन्न भिन्न लोगों का अधिकार रहता था। उक्त तीन हिस्सों में के प्रत्येक टुकड़े पर एक एक व्यक्ति

अधिकार रहता था। प्रारंभ में प्रत्येक हिस्से के सब टुकड़े समान होते थे। परन्तु बाद में एक ही व्यक्ति के अधिकार में एक से अधिक टुकड़ों के चले जाने से असमानता उत्पन्न हो गई इस प्रकार की जमीन के सम्बध में कृषि सम्बंधी जितनी रूढियां प्रचालित हैं, वे सब एक सी ही हैं। प्रत्येक टुकड़े में बारी बारी से दो प्रकार की फसल बाइ जाती थी और तीसेर वर्ष वह टुकड़ा परती रखा जाता था।

खेत की मेंड़ पर, फसल काट लेने पर खेत में तथा चरागाह में पशु चराने का अधिकार कायदे से ही मिल सकता था। यह हक किसानों को ही प्राप्त था। प्राचीन रूढ़ी के अनुसार अब भी चरागाह सर्व साधारण की मालियत समझा जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को वहां अपने पशु चराने का पूर्ण अधिकारहै।परन्तु चरणोईका अधिकार अकसर बदलता रहताथा। चरागाह की बटनी चिट्ठियां डाल कर या सूची में लिखे हुए नामों की अनुक्रम संख्या के अनुसार ही की जाती थी। फसल कट जाने पर चरागाहों की हदें तोड़ दी जाती थी। प्रत्येक

मानर में यह नियम था कि 'लामासडे*' को सब हदें तोड़ दी

---

* 'लामास डे' का तिवहार अगस्ट मास की पहली तारीख को मनाया जाता है। उस रोज धर्माध्यक्ष को रोटी का नैवेद्य चढाया जाता है। 'लामास डे' लोफ-मास-डे (Loof-mass-day) का अपभ्रंश सा मालूम होता है। अनाज घर में आ जाने पर, उसे खाने के काम में लाने के पहले देवता को अर्पण करते हैं। यह प्रथा सर्वत्र पाई जाती है। भारत वर्ष में भी यह प्रथा प्रचलित है। तुलसी विवाह के पहले गन्ना न खाना, अन्नकूट के दिन भगवान को नैवेद्य लगाने पर मूली आदि शाक भाजी खाना तथा महाशिवरात्री को आम का वौर शिवजी के अर्पण करना आदि इसी प्रथा का स्मरण दिलाती है। नवीन अनाज घर में आने पर आज भी भारतीय कृषक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा बहुत अनाज मंदिरों में चढाते और ब्राह्मणों को अर्पण करते हैं। इंगलैंड में पैदा वार का $\frac{1}{10}$ भाग धर्मगुरु को अर्पण करने की प्रथा थी। इसे दशमांश (tithe) संज्ञा दी गई थी। नवीन अनाज आजाने और कृषि कार्य निबट जाने के कारण लोग उक्त तारीख को तिवहार मनाते थे। इसी रोज खेतों की सरहद भी तोड़ दी जाती थी। इसी रोज से एक मेला लगता था, जो लगभग आठ रोज तक रहता था। World workers नामक चरित्र माला के राबर्ट स्टीफन्सन के चारित्र के तेरहवें सफा में न्यूकॉसल में होने वाले इस तिवहार का बड़ा मनोरंजक वर्णन दिया गया है। सर वाल्टर स्काट ने अपने पायरेट उपन्यास में आर्कनी द्वीप के कर्कवाल

जांय। सरहद के निशानात मिटा डालने पर हर एक आदमी उस जमीन को उपयोग में ला सकता था। खेती बाड़ी की जमीन की भी कभी २ यही व्यवस्था की जाती थी। किंतु धीरे धीरे वह पद्धति बंदसी होगई और एक नवीन पद्धति ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया।

कई ग्रंथ कारों का मत है कि सर्व साधारण जमीन पर खेती करने की पद्धति अच्छी नहीं और चरागाह के अदल बदल होते रहने की पद्धति के कारण झगड़े बखेड़े होते रहते हैं और विद्वेष बढ़ जाता है। कुछ अंश में यह बात सच भी है। किन्तु हजारों वर्ष के अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि उक्त पद्धति इतनी सदोष नहीं। आज कल भी कहीं कहीं सार्वजनिक चरागाह और सर्व साधारण जमीन पाई जाती है। करीब दो सौ वर्ष के पहले इंगलैंड में

ग्राम में लगने वाले 'सेंट ओला' नामक मेले का वर्णन किया है। इस मेले का वर्णन करते हुए आपने एक स्थान पर लिखा है कि उस रोज कोई भी युवक किसी भी युवति के साथ स्वतंत्रता पूर्वक विहार कर सकता था।

में भी सर्व साधारण जमीन के उदाहरण पाये जाते थे। किन्तु तदनन्तर पार्लमेंट में एक नवीन कायदा पास हो गया जिस से हरेक व्यक्ति को अपनी २ जमीन के चारों ओर तार आदि का कम्पौंड खींच लेने का हक मिल गया। इस 'एनक्लोझर एक्ट' के पास हो जाने से लोगों ने अपनी २ जमीन के चारों ओर कम्पौंड लगा लिए। इसी कानून की बदौलत जमीन पर का सर्व साधारण का हक चला गया। और जमीन व्यक्ति विशेष की मौरूसी जायदाद बन गई।

* नासी ने मार्शल के ग्रंथ के आधार पर टयूटन लोगों की कृषिपद्धति का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"इंगलैंड के अधिकांश भावों में, विशेषतः पूर्व और मध्य प्रान्त, विल्ट्शायर, सरे, यार्क शायर, आदि प्रान्तों में बहुत से विस्तीर्ण खुले मैदान पाए जाते हैं। नार्दम्पटन प्रान्त के ८९ गांव और वोरिक की ५० हजार एकड़ जमीन इस दशा में है। वर्क शायर और विल्टशायर का आधे से

* नासीकृत Ueber Mittelallerliche Feldgemeinschaft in England नामक ग्रंथ का सफा ४ देखिए।

अधिक भाग और हटिंग्डन की एक लाख तीस हजार एकड़ जमीन सार्व जनिक चरागाह और सर्व साधारण खेतों से व्याप्त है"।

प्राचीन कालीन सर्व साधारण भूमि खंडों के अवशेष लण्डन नगर और आक्सफर्ड तथा कौम्ब्रिज विश्वविद्यालय के समीप अब तक पाए जाते हैं। इंगलैंड के अन्य भागों में भी इसके अवशेष पाए जाते हैं।

विलियम मार्शल नामक एक विद्वान लेखक ने अपनी Elementary and Practical treatise on landed Property नामक पुस्तक में सर्व साधारण खेतों का अच्छा वर्णन किया है। हम आपके उक्त ग्रंथ के एक अवतरण का सारांश नीचे देते हैं। आपने आंखों देखी कृषिपद्धति का वर्णन किया है। यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि मार्शल के मत से सर्व साधारण खेत जमीन का वह टुकड़ा है, जिसे कई लोग साझे में जोतते बोते हैं।

कुछ शताब्दियों पूर्व इंगलैंड की जमीन पर सर्व साधारण का अधिकार था प्रत्येक गांव में भिन्न२ प्रकारकी जमीन रहती

थीं; क्योंकि पुरातन नियमों के कारण भिन्न भिन्न समय में उन पर कुछ विशेष प्रकार के अधिकार प्राप्त हो गए थे । और यही नियम तब धीरे धीरे कायदों में परिणत हो गएथे । भिन्न भिन्न प्रान्तों में इन ग्राम-नियमों में थोड़ा बहुत अन्तर पाया तो अवश्य जाता है परन्तु देश के अधिकांश भाग में यह अन्तर अति ही सूक्ष्म है । नीचे के वर्णन पर से इंगलैंड के सर्व साधारण स्वामित्व वाले गांवों की कुछ कुछ कल्पना हो जायगी । यह व्यवस्था ऐसी उत्तम थी कि प्रत्येक गांव या खेड़ा एक सर्व साधारण खेत माना जाता था, चाहे फिर उस खेत को जोतने वाले किसानों की संख्या कितनी ही ज़्यादा क्यों न हो ।

"गांवों के आस पास पशुओं के लिए जुदे बाड़े रखे जाते थे । ये बाड़े सर्व साधारण के होते थे । और घास पानी की सुभीता के अनुसार ये बाड़े खेती बाड़े की जमीन के मध्याभाग में रखे जाते थे । पास ही खेत भी होते थे, जिनमें पशुओं के लिए चरी घास आदि बोया जाता था ।

"दो पहाड़ों के बीच में बहने वाली नदियों की तटवर्त्ती

भूमि या दलदल के बीच में की सूखी जमीन, जिसे इंग्ज (ings) कहते हैं, चरागाह के लिए रक्षित रखी जाती थी ।

" गांव की जमीन का नीरस भाग छोड़ दिया जाता था । जलाऊ लकड़ी, इमारती लकड़ी या पशु चराने के लिए ही यह जमीन काम में लाई जाती थी । तथापि यह नियम था कि किसान गरमी के मौसम में उतने ही पशु इस जमीन पर चरा सकता था, जितने वह शीतकाल में, अपने खेतों में घास चरी आदि पैदा कर पाल सके ।

" खेती बाड़ी की जमीन कई भागों में विभाजित की जाती थी । हरएक टुकड़े का क्षेत्रफल गांव के आकार और किसानों की योग्यता पर अवलम्बित रहता था ।

" कुल जमीन की एकसी व्यवस्था रखने और सारे टुकड़े को एक ही खेत समझ कर खेती की जाने के लिए हर एक टुकड़ा तीन समान भागों में विभक्त किया जाता था । हर एक भाग में पहले साल गेहूं और दूसरे साल जुआर, ओट तूर आदि बोया जाता था और तीसरे साल हरएक भाग पड़ती रखा जाता था । बोने का यह क्रम

ठहरा दिया जाता था। आज कल के सुधारता के युग में यह व्यवस्था अयोग्य मानी जाती है तथापि उस अंधकारमय युग में यह बड़े काम आई। उस समय प्रत्येक गांव का एक मालिक होता था किसान उसके भूमिवाहक (Tenants) होते थे। किसानों का जिमींदार के यहां सैनिक—सेवा या अन्य किसी प्रकार की सेवा करनी पड़ती थी। कभी २ उसकी नीच टहल भी करनी पड़ती थी। कई बार उन्हें अपनी जमीन और बालबच्चों को छोड़ कर दूर २ जाना पड़ता था। तथापि सारे गांव की एकसी अवस्था होने से पशुओं की व्यवस्था बहुत अच्छी तरह से रखी जाती थी। उस पद्धति से एक लाभ यह भी था कि त्रुटियों का पता लगा कर किसान और स्टेट को फायदा पहुंचाने वाली पद्धति से खेती करवाने का काम सरल होगया था सब किसान एक ही गांव में इकट्ठे रहते थे अतः वे शत्रु से अपनी रक्षा भी कर सकते थे।

सर वाल्टर स्कॉट ने अपने 'पायरेट' नामक उपन्यास में आर्कनी और शेटलैंड की 'यूडाल' नामक जिमीदारी पद्धति का

अच्छा खाका खींचा है। स्कॉट साहब अपने जल यात्रा के रोज़नामचे में लिखते हैं कि अब यूडाल नामक पूर्ण स्वतंत्र ज़मीदारों का अस्तित्व न रहा फ्युडालिजम के जमाने में पैदा हुआ सैनिक सेवा पद्धति भी लोग नहीं समझते। बहुतसी जगह बड़े बड़े प्रदेश, गांव या मंडल के अधिकार में हैं। इन प्रदेशों की जमीन विभाजित की गई है। मैदान सार्वजनिक है। तो भी गांव का एकआध व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी पर इस सर्व-साधारण की जमीन में से लोगों को टुकड़े बांट दिया करता था। लर्विक नामक गांव सौडउपसागर के किनारे वाली सर्वसाधारण जमीन पर बसा हुआ है स्कॉटलैण्ड के उत्तर के द्वीपों में यह व्यवस्था अब तक प्रचलित थी। तथापि दक्षिण प्रान्तों में फ्यूडल सिस्टम के कारण टयूटन लोगों की सब रूढ़ियां नष्ट हो गई हैं। लाडर प्रान्त की हद में बर्जेस एकर नामक १०५ जमीन के खण्ड हैं। इनका विस्तार दो से लगा कर ३५० एकड़ तक है। इन पर भिन्न २ व्यक्तियों का अधिकार है। जिस मनुष्य के पास बर्जेस एकड़ जमीन न होती थी वह गांव का निवासी नहीं मना जाता था। ' लाडर-कामन नामक १७०० एकड़ जमीन अति

प्राचीन काल से भिन्न २ लोगों के अधिकार में चली आ रही है । उसमें से कुछ भाग लोगों को एक निश्चित समय के लिए खेती करने के लिए दिया जाता था । अवधि समाप्त हो जाने पर वह परती रखा जाता था और उस पर पशु चराते थे । उक्त १०५ बर्जेस एकड़ में से प्रत्येक बर्जेस एकड़ के मालिक को इस सार्विजनिक जमीन में से एक एक टुकड़ा दिया जाता था । खेती बाड़ी की जमीन आवश्यकतानुसार कई टुकड़ों में विभक्त कर सब को बांट दी जाती थी । पहाड़ी जमीन लेने वाले को दो शर्तें पालनी होती थीं । प्रथम शर्त यह थी कि उसे पंचायत द्वारा ठहराई हुई पद्धति से ही खेती करनी पड़ती थी और दूसरी शर्त यह थी कि उसे रास्ते बांध आदि के लिए लगाने वाले खर्च के लिए कुछ कर देना पड़ता था । यह कर प्रति वर्ष एक पौंड या १५) रुपये तक होता था । शेष सार्वजनिक जमीन पशु चराने के काम में आती थी । गांव की सीमां के अन्दर रहने वाले प्रत्येक किसान को दो गायें और १५ भेड़ चराने का अधिकार प्राप्त था । एवं मृत किसान की विधवा को एक गाए और १२ भेड़ चराने का हक था । प्राचीन काल की

लोक स्थिति का इस से अच्छा उदाहरण इंगलैंड या जरमनी में अन्यत्र मिलना संभव नहीं। यह पद्धति अति प्राचीन है। गांव पंचायत द्वारा ठहराए हुए नियम से जोती बोई जाने वाली जमीन बारबार बदलती रहती थी और यह बंटनी चिट्ठियां डाल कर की जाती थी। अन्य दूसरे लोगों को भी सार्वजनिक जमीन पर पशु चराने का अधिकार था और यह बात इंगलैंड में भी पाई जाती है।

नासी ने मार्शल साहब के ग्रंथ से बहुत सी बातें ली हैं। नासी तथा मेन साहब के वर्णन को मिला देने से टयूटन लोगों की ग्रामसंस्था के आविशेष, की कल्पना हो जाती है। हम उसे सारांश में नीचे देते हैं।

१—सादी तथा एक ही आकार की जमीन—इस पर बहुत से लोगों का अधिकार रहता था और यह जमीन मिश्र होती थी। ब्लमायर साहब के मत से एक खेड़े में, जिसका विस्तार २८३१ एकड़ था, कुल २३१५ खंड थे जिनका क्षेत्रफल २३२७ एकड़ था।

२—समान क्षेत्र फल के खेतों के तीन बराबर पट्टे

किए जाते थे जो रूढ़ी के अनुसार जोते बोए जाते थे । यह सर्वसाधारण नियम था, कि प्रत्येक खंड अनुक्रम से प्रति तीसरे वर्ष परती रखा जाय ।

३—भूमि स्वामित्व बदलता रहता था ।

४—तृणाच्छादित मेंडों पर पशु चराने का हक सबको प्राप्त था इसलिए वे तोड़ी जा सकती थीं ।

ग्राम भूमि के चरागाह तीन प्रकार के होते थे (१) चरागाहों का बाराबर स्थलान्तर होता था और उनकी बंटनी भी भिन्न प्रकार से की जाती थी । (२) घास काट लेने पर बागुड़ तोड़दी जाती थी और (३) फसल कट जाने पर गांव के प्रत्येक व्यक्ति को उस खेत में पशु चराने की पूर्ण स्वतंत्रता थी ।

आजकल बहुत सी सार्वजनिक जमीन परती पड़ी है; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन काल में वह जोती बोई जाती थी । बहुत से ऐसे चिन्ह पाये जाते हैं, जिनसे हम कह सकते हैं कि अमुक स्थान पर प्राचीन काल में सार्वजनिक खेत थे ।

तीसरा परिच्छेद।

प्राच्य ग्राम मंडल।

मेनसाहब अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि मनुस्मृति में ग्राम संस्था का उल्लेख किया गया है किन्तु यह उनका भ्रम है। मनुस्मृति में ग्राम संस्था का स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता है, तथापि दो तीन स्थानों पर पर्याय से ग्राम रचना सूचित की गई है। मनुस्मृति के सातवें अध्याय में (श्लोक (११४-१२०) ग्रामाधिकारियों की योजना पर विचार किया गया है। इस पर से यह सिद्ध होता है कि राजपुरुषों का व्यवहार ग्राम समूहों से चलता था न कि व्यक्तियों से। उसमें लिखा है कि हरएक गांव पर एक ग्रामाधि पति—पटेल, नियत किया जाय। दश-ग्रामों पर एक दशग्राम पति, बीस गांवों पर एक विंशतीश, सौ गांवों पर एक शतेश और हजारों गांवों पर एक सहस्त्रेश नियुक्त किया जाय। कर वसूली शान्ति रक्षा का काम ही इन ग्रामाधि पतियों के जिम्मे था। प्रत्येक गांव में सचिव नामी न्यायधीश रहा करता था। मनुस्मृति के आठवें अध्याय

में सीमा का झगड़ा निबटाने के लिए कुछ नियम दिए हैं । इन नियमों को पढ़ने से यही मालूम होता है कि मनु के जमाने में भारत वर्ष में ग्राम संस्थाओं का अस्तित्व था ।

हिन्दू और टयूटन मूल आर्य जाति की दो मुख्य शाखाएं हैं ये आर्य जाति से व्याप्त प्रदेशों के पूर्वी और पश्चिमी सिरों पर रहती है । इन दोनों शाखाओं में पाई जाने वाली ग्राम संस्थाओं की रचना में बहुत कुछ समानता है । इस पर से यही सिद्ध होता है कि आर्य जाति के उक्त दो शाखाओं में विभक्त होने के बहुत पहले ही ग्राम संस्था का उदय हो गया था । कुछ लोगों का मत है कि दोनों राष्ट्रों में से किसी एक ने दूसरे से ग्राम रचना सीखी है परन्तु अभी तक यह पता नहीं चला है कि पूर्वकाल में टयूटन और हिन्दू जाति का सम्मिलन हुआ था और न उनकी देश स्थिति ही समान थी । इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि दोनों ही जातियों में ग्राम रचना स्वतन्त्र रूप आस्तित्व में आई हैं । हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि दोनों ही जातियों ने मूल आर्य जाति से ही ग्राम रचना सीखी थी । आर्य जाति की अन्य शाखाओं

में भी इनका अस्तित्व पाया जाता है। अनार्य जातियों में ग्राम संस्था विद्यमान है। एमिली-डी-लावेलायी नामक एक फ्रेंच विद्वान का मत है कि सभ्य राष्ट्रों में, एक जमाने में, ग्राम संस्था का अस्तित्व था। प्राचीन काल में—मेक्सिको देश में 'कालपुल्ली' नामक जनसंघ थे जिनका ग्राम मंडलों से बहुत कुछ साम्य था। प्रेस्काट नामक इतिहास लेखक का मत है कि पेरू देश में भारत के समान ग्राम व्यवस्था थी। वहां जाति भेद भी था। पेरू में व्यक्ति स्वामित्व का बिलकुल अभाव था। प्रत्येक विवाहित पुरुष को कुटुम्ब पोषणार्थ एक वर्ष के लिए कुछ जमीन देदी जाती थी। अवधि समाप्त होजाने पर बिना आज्ञा प्राप्त किए किसी को उसके जोतने बोने का अधिकार न था। डाक्टर फ्रीमन साहब ने अपनी Science of the comparative politics नामक पुस्तक ग्रीक रोमन और ट्यूटन लोगों की प्राचीन में संस्थाओं का मिलान किया है। आपके मतसे एथेंस नगरकी 'लेनास' रोमनगर की 'जेंस' 'ट्यूटन लोगों की 'मार्क' या 'जेर्मिडी' आयर्लैंड और स्कॉटलैंड की 'क्लैन' और पूर्वी राष्ट्रों के ग्राम मंडल आदि जनसंघ प्रारंभ में एक ही थे। केवल देश

भेद से ही उन्होंने भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिया था। एशिया के मीर का भारत के ग्राम मंडल से बहुत कुछ साम्य है। मीर शब्द का योगिक अर्थ है जगत्। मीर शब्द पर से ही इन जनसंघों की स्वतंत्रता की कल्पना की जा सकती है। भारत के पटेल के समान रूस का स्टोरस्ट ग्राम का अधिकारी होता था। स्टोरस्ट के कार्यों पर देख रेख रखने के लिए कुटुम्ब नायकों की एक समिति नियुक्त की जाती थी। ग्राम पंचायत के समान मीर को भी न्यायाधिकार प्राप्त था। इसके अधिकार बहुत ही व्यापक थे और वह परम्परागत रूढ़ी के अनुसार ही अपने अधिकारों का उपयोग करती थी। रूसमें मीरके प्रत्येक कुटुम्ब पर कुटुम्बनायक की अनियंत्रति अधिकार रहता था। रूस में कुटुम्ब नायक को 'खोजाइन' कहते थे।

सर हेनरी मेन ने अपने ग्रंथ Village communities में लिखा है कि ग्रीक, रोमन टयूटन आदि आर्य राष्ट्रों में ग्राम व्यवस्था एक सी ही थी। परन्तु मेक्सको, पेरू आदि देशों में भी तो ग्राम संस्था का अस्तित्व पाया जाता है। अभीतक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि पेरू और मेक्सिको

के आदि निवासी आर्य थे और न अभीतक यह भी पता चला है कि उन्होंने आर्यों से ग्राम व्यवस्था सीखी थी। यदि मानलें कि वहां ग्राम व्यवस्था स्वतंत्र रूप से ही अस्तित्व में आई है। तो यह भी मानना पड़ेगा कि यूरोप और एशिया के भिन्न २ राष्ट्रों में उनका उदय स्वतंत्र रूप से ही हुआ है। और यदि यह बात मान लें तो टयूटन और हिन्दू ग्राममंडलों के सादृश्य पर से उनका प्राचीनत्व और समानप्रभुत्व सिद्ध नहीं होता। अतएव भाषा शास्त्र द्वारा उनके प्राचीनत्व को सिद्ध कर दिखाना बहुत जरूरी है।

लैटिन Domus ग्रीक Domos गृहवाची शब्द हैं। ये शब्द वेद के 'दमन' और 'दम्' शब्दों से निकले हैं। स्त्री पुरुष वाची 'दम्पति' शब्द का पूर्व अवयव दम्-दम्‌शब्द का संक्षिप्त रूप ही है। प्रारंभ में दम्पति या Dem-s-poti शब्द कुटुम्ब नायक के लिए ही व्यवहृत किया जाता था। किन्तु बाद में स्त्री और पुरुष के निकटत्व के कारण यह शब्द पति पत्नी के लिए व्यवहृत किया जाने लगा।

अनेक कुटुम्बों के समुदाय को गांव कहते हैं। उस गांव

में रहने वाले लोगोंको विश् तथा घरोंको 'वेश' संज्ञा दी गईहै। 'विश्' और वेश शब्द बहुत ही प्राचीन हैं। ये शब्द सब आर्य भाषाओं में पाए जाते हैं। संस्कृत विश भेद विस, फारसी, विथ, ग्रीक fik या oikos लैटिन Vieres और गॉथिक veiks शब्द एक ही हैं। वेश को परि उपसर्ग लगाने से परि वेश शब्द बनता है। जो गृह समुदाय वाची है। परि वेश शब्द ग्रीक भाषा में Para-oikos बन गया। इसीसे ग्राम वाची अंग्रेजी शब्द 'पैरिश' (Parish) की उत्पति हुई। फ्रांस देश की राजधानी पेरिस नगर के नाम की उत्पति भी इसी प्रकार हुई होगी।

ग्रीनविच (Greenwich) वुलाविच (woolwich) आदि गांवों के नाम का अन्तिम शब्द wich संस्कृत 'विश' शब्द से ही बना है। हंगेरी प्रान्त की स्लैव जातियों में प्राचीन नमूने के जनसंघों का अस्तित्व पाया जाता है। एक ही पूर्वज से पैदा हुए अनेक कुटुम्बों से गोत्र बनता है। हंगेरी में गोत्र को ब्रास्त्वो (Bralstoo) कहते हैं। अनेक गोत्रों के मिलजाने से सिब (Sib) या सेप्ट (Sept) बनता

है। और उसमें के व्यक्ति समुदायको ' सिबजा ' कहते हैं। भाषा शास्त्रविदों का मत है कि सिब और सिबजा शब्दों की की उत्पत्ति संस्कृत वेश और सभा शब्दों से ही हुई है।

वेद में ग्राम और बृजन् शब्द ग्रामवाची हैं। ग्राम शब्द का अर्थ (गृह+मा) घरों का समुदाय है। और वृजन् शब्द का अर्थ है सीमा नियुक्त कर मर्यादित किया हुआ प्रदेश। ग्राम शब्द से ग्रकि Kulmn गॉथि Haims लिथु Kemas व फार. Caymis शब्द बने हैं। प्रारंभ में ये सब शब्द जन समूह वाची थे किन्तु बादमें वे लोगों के रहने के स्थान के लिये व्यवहृत किए जाने लगे। प्रत्येक जनसंघ को 'बृज्' या 'बृजन्' कहतेथे। प्राचीन काल में चोर आदि अपराधियों को जनसंघ से अलग करने की—परावृज् करने की—प्रथा थी। आधुनिक कालीन जातिबहिष्कार का भी यही मूल है। जनसंघ से अलग करने की चाल जनसंघ के साथ ही अस्तित्व में आई होगी। कारण सब देशों में तद्वाचक शब्द पाए जाते हैं। अंगरेज़ी शब्द wreck या wrech संस्कृत परावृज् शब्द से ही बनेहैं। इसी वृजन् शब्दसे जरमन

Bergen, ॲग्लोसेक्शन Beorgan लैटिन Burgus और अंगरेजी Borough शब्द की उत्पति हुई है । ये सब शब्द ग्रामवाची हैं । सारांश में, शब्द साहश्य परसे भी यही मानना पड़ेगा कि प्राचीन आर्य जाति के शाखाओं में विभक्त होनेके पहले ही ग्राम व्यवस्था और तत्वसम्बंधी रीतरस्म पैदा होगए थे । *

सबसे पहले अंगरेजों ने बंगाल पर अधिकार किया । और सबसे पहले उन्हें उसी विस्तीर्ण प्रदेश की राज्यव्यवस्था देखनी पड़ी । कई कारणों से बंगाल की ग्राम व्यवस्था करीब करीब नष्ट होगई थी । अतएव मुसलमानों के समान अंगरेज भी सोचने लगे कि राजा ही भूमिका मालिक है । एवं वही सबको निजी जायदाद के हक देता है । इंडिया गैझिटीयर के लेखक सर. डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर साहब अपनी पुस्तक 'Bombay 1885 to 1890' के सफ़ा २२५–२६ में लिखते हैं

---

* यदि अधिक उदाहरण देखना चाहें, तो Dr Schrades' Pre-historic Antiquities of the Aryan People नामक पुस्तक देखिए ।

One distinction between the administration of India and the administration of Modern European state is, that in India the British power not only governs the country, but onws the land. It is theoretically the universal land lord, as well as the administrative authority, and its servants in the executive department are not only rulers but estate agents + + + + + Hindu Rajas or Mohamadan kings or Marathas + + + had derived nearly the whole of their revenue from their position as the supreme land lords. अर्थात् आधुनिक यूरोप के देशों और भारत के शासन में एक अंतर यह है कि भारत में अंगरेज केवल देश के शासक ही नहीं वरन भूमि के मालिक भी हैं। वे देशके एक मात्र स्वामी और शासक हैं। और इनके कर्मचारी शासक ही नहीं, इस्टेट एजंट भी हैं। हिन्दू और मुसलमान और मराठा राजाओं को उनकी आयका अधिकाश, जमीन के मालिक की हैसियत के कारण ही प्राप्त हुआ था।

मेनका भी यही मत है। किन्तु एडवर्ड टामसन नामक

ग्रंथ कर्ता लिखते हैं कि मुसलमान बादशाह अपने को जमीन का मालिक नहीं समझते थे। *

हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है कि राजा भूमि का मालिक नहीं माना जा सकता। बोधायन के धर्म सूत्र में साफ शब्दों में लिखा है कि राजा जमीन का मालिक नहीं माना जाता था। प्रजा की सेवा करने के बदले में उसे पैदा वार के एक निश्चित अंशके रूपमें वेतन दिया जाता था।

टाडसाहब अपने राजस्थान में मेवाड़ का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखते हैं कि किसान ही भूमि का स्वामी है। वे भगवान मनुके 'स्थाणुः च्छेदस्य केदारम्' (जमीन का मालिक वही है। जो जंगल काट कर खेत तैयार करता है) ही के आधार पर अपने को जमीन का मालिक मानते हैं। मेवाड़ में ही क्यों सारे राजपूताने में यह कहाबत प्रचलित है कि 'भोग राधनी राज हो। भोमरा धनी मा छो' अर्थात् राजा कर का अधिकारी है और जमीन के मालिक हम हैं। राजस्थान में ही क्यों, भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त की हिन्दु

* Revenue Resources of Moghal Empire सफा ८

जाति के विधान पत्र में उक्त पवित्र वाक्य स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है।

कुरान के टीकाकार हिडाया का मत है कि प्रजा ही जमीन की मालिक है अन्य सब महमदी कायदे पंडितों का भी यही मत है औरंगजेब ने भी एक जाहिरनामे में प्रजा का भूमि स्वामित्व स्वीकार किया था। सन् १७१५ ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी कलकत्ते वाली कोठी के पास ३८ गांवों की ताल्लुके दारी खरीदने के लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा था। बादशाह ने उन्हें प्रजा से ही गांव खरीद ने की आज्ञा दी थी। पेशवा भी कीमत देकर जमीन खरीदते थे।

सन १८५७ में बम्बई हायकोर्ट के 'कानड़ा लैंड असेसमेंट' के मुकद्दमें में जस्टिस वेस्ट्राप और जस्टिसवेस्ट ने इस प्रश्न पर खूब विचार कर हिन्दू धर्मके आधारपर प्रजाका भूमिस्वामित्व सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया था। प्रीवी कौंसिल ने भी इसीका अनुमोदन किया था। मौंटस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन ने अपने इतिहास में लिखा है कि प्रजा ही जमीन की मालिक है।

ऊपर के विवेचन पर से यह बात सिद्ध होजाती है कि

अंगरेज सरकार जमीन की मालिक नहीं मानी जासकती। तब यहां यह प्रश्न उठता है कि अंगरेजों को भूमिस्वामित्व कैसे मिलगया ?

रहे सहे स्वतंत्र मुसलमाल सूबेदारों को पदच्युत कर कम्पनी ने उन्हे अपने यहां नौकर रखा और उन्हीं के द्वारा वह अपना राज काज चलाने लगी। जमीन का बन्दोवस्त भी इसी समझ से किया गया कि अंगरेज सरकार ही जमीन की मालिक है। धीरे २ रैय्यतवारी पद्धति प्रचार में आने लगी इस पद्धति से भारत को लाभ हुआ या हानि, इसबात पर यहां विचार करना हम योग्य नहीं समझते। केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि रैय्यत वारी पद्धति से एक दृष्टि से भारतीय कृषकों को लाभ ही हुआ है तथापि यह लाभ नहीं के बराबर ही है। किन्तु हम यह नहीं मान सकते कि प्राचीन काल में भारत में यह पद्धति अस्तित्व में थी।

अति स्थूल दृष्टि से विचार किया जाय तो टयूटन या स्कैंडिनेवियन लोगों के ग्राम समूहों का वर्णन भारत वर्ष के ग्राम मंडलों को भी लागू हो सक्ता है। यहां भी खेती

बाड़ी की जमीन जुदी होती थी और उस के विभाग किए जाते थे। इन जमीन के टुकड़ों के जोतने बोने के परम्परागत सूक्ष्म नियम पालना ही होते थे। आब हवा की अनुकूलता के अनुसार खेतों के किनारे बीड़ रखे जाते थे। खेती की जमीन अलग करने पर बाकी की जमीन सर्व साधारण की मालकी की मानी जाती थी एवं प्रत्येक व्यक्ति को उस पर पशु चराने का अधिकार था। खेड़े में कई घर होते थे और प्रत्येक घर पर गृहपति का अप्रतिबंध अधिकार रहता था। एक आध रूढ़ी के सम्बन्ध में वाद उपस्थित होने पर ग्राम वासियों की व्यवस्थापक समिति या पंचायत ही उस का निर्णय करती थी। परन्तु भारत वर्ष की ग्राम संस्थाओं में बहुतसी ऐसी रीतियां प्रचलित हैं, जिन का यूरोप में नामोनिशान तक नहीं पाया जाता। तथापि ये रीतियां यूरोप में भी अवश्य ही प्रचलित रही होंगी।

पूर्व और पश्चिम में कृषि पद्धति एकसी ही थी। भारत वर्ष में भी जमीन के तीन भाग किए जाते थे। परन्तु ऐसे सादृश्य स्वयंभू भी हो सकते हैं। उष्ण देशों में पानी ही

खेती का मुख्य आधार है । जल के न्यूनाधिक्य के अनुसार एक ही देश में भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ पद्धति से खेती करनी पड़ती है । यूरोप और भारत वर्ष में खेती सम्बंधी कई सूक्ष्म नियम बनाए गये थे । और इन्हीं नियमों की बदौलत भारत की आधुनिक कृषि पद्धति यूरोप की प्राचीन कृषि पद्धति से साम्य खाती है । दोनों ही देशों में ये नियम एक ही उद्देश से बनाए गए थे । और यह उद्देश था कृषि पद्धति एकसी बनाए रखना । जमीन पर कुटुम्ब का व्यक्तिशः स्वातंत्र्य मानने लगने से ही मंडलों में न्यूनाधिक वैचित्र्य दृष्टि गोचर होने लगा । तथापि प्राचीन कृषि-पद्धति आजतक किसी न किसी रूप में सर्वत्र प्रचलित है ।

प्राचीन काल में कायदों की उत्पत्ति करार या एक मत के समान कृत्रिम उपायों से नहीं होती थी । वरन एक आध श्रेष्ठ व्यक्ति के अधिकार या परम्परागत रूढ़ी या आकस्मित कारणों से ही उनकी उत्पत्ति होती थी । कई रूढ़ियां केवल कुलाचार होने के कारण ही प्रचलित थीं । तत्कालीन लोगों की धारणा थी कि राजा ने ही इन कुला-

चारों को प्रचलित किया था। हिन्दू लोगों का विश्वास है कि राजा को ही नवीन आचार शुरू करने का अधिकार है, भारत वासी राजा को ईश्वरांश मानते हैं और उसकी आज्ञा पवित्र और अनुल्लंघनीय मानी जाती है।

मेन, मिल, आर्म आदि कुछ लेखकों ने अपने ग्रंथों में लिखा है कि हिन्दू राष्ट्र कलह-प्रिय है। और वे अपनी बात की पुष्टि के लिए आधुनिक न्यायालयों में आने वाले मुकद्दमों की संख्या पेश करते हैं। तथापि यह उनका भ्रम है। उक्त लेखकों के मत का खंडन करते हुए प्रोफ़ेसर मेक्स मूलर अपने ग्रंथ India, what can it teach us के सफा ४३-४४ में लिखते हैं:—

But is it true that the Hindus are more fond of litigation them other nations? If we consult Sir Thomas munro, the enusient governer of Madras, and the powerful advocate of Ryotwari settlement, he tells us in so many words: I ' have had ample oppertunities of observing the Hindus in every situation and I can affirm that they are

not litigious. अर्थात् क्या यह असल में सच है कि हिन्दू राष्ट्र मुकद्दमें बाज हैं? मद्रास के प्रसिद्ध गवरनर और रैय्यत वारी पद्धति के पोषक सरथॉमस मनरो कहते हैं, "मुझे हिन्दुओं को प्रत्येक क्षिति में निरीक्षण करने के कई अवसर मिले हैं और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि वे मुकद्दमे बाज नहीं हैं।

भारत वासियों पर हिन्दू शास्त्रों की अच्छी छाप है और मनु महारज आदेश करते हैं कि राजा और उसके कर्मचारियों को मुकद्दमें बाजी रोकने की कोशीश करना चाहिए। *

मध्यप्रान्त और मध्यभारत की बस्ती घनी नहीं है। इन प्रान्तों में भी खेती बाड़ी की जमीन के लम्बे पट्टे एवं उनके पुनः पुनः बितरण के उदाहरण पाए जाते हैं। परन्तु अंगरेज़ी शासन प्रणाली के प्रभाव के कारण अब वे नाम शेष होगए हैं। कुछ लेखकों का मत है कि ग्राममंडल की आन्तरिक व्यवस्था जनता की स्वहित—परता और उद्योग बृद्धि की उत्कंठा ही के कारण नष्ट होगई है। अन्य कुछ

---

* मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक ४३.

लेखकों ने लिखा है कि मृतव्यक्तियों के उत्तराधिकारियों में जायदाद बांटने और कर्ज चुकाने के लिए जमीन बेचने की प्रथा ही के कारण ग्राम मंडल का नाश हुआ है। सारे गांव के लोग बंधुत्व के नाते एकत्र रहकर परस्पर व्यवहार कर सकते हैं किन्तु दो सहोदर अपना हिस्सा लेकर अलग रहने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं। इन्हीं सब कारणों से ग्राम मंडल नष्ट होगए। एवं कृशकों को अधिकांश भूमि साहूकारों के यहां बंधक पड़गई।

अब हम गांव पर विचार करेंगे। व्हैन मोरर साहब ने ट्यूटन लोगों की ग्राम व्यवस्था का जो वर्णन दिया है, वह अधिकांश में भारत वर्ष की ग्राम व्यवस्था को भी लागू होता है। भारत वर्षमें भी कुटुम्ब का मुखिया ही कुटुम्ब का राजा होता था। उसकी आज्ञा प्राप्त किए बिना अन्यव्यक्ति घरकी हद्द में पैर तक न रख सकता था। भारत में गृह-स्वातंत्र्य के साथ ही साथ प्रत्येक कुटुम्बका अन्तस्थ व्यापार भी गुप्त रखा जाता था। गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपने घर की बात किसी पर प्रकट नहीं करते थे। अपरि हार्य संकट आपड़ने

परभी यह नियम कदापि नहीं तोड़ा जाता था । रोमन लोगों में पिता का पुत्र पर अनियंत्रित अधिकार रहता था । यहां तक पिता पुत्र को प्राणदंड तक देसकता था । धीरे धीरे यह नियम ढीला पड़ गया । भारत वर्ष के उन प्रान्तों में भी जहां परदे का रिवाज प्रवेश न कर पाया है, गौप्यरक्षण बड़ी सावधानी से किया जाता है । स्मृति आदि ग्रंथों में भी बहुत कम नियम संगृहित किए गए हैं । स्मृति कारों ने अपने ग्रंथों में उन्हीं नियमों का समावेश किया है जिनसे समाज का पारस्वारिक व्यवहार आबद्ध था । प्रत्येक कुटुम्ब की भीतरी व्यवस्था स्वतंत्र रीति से चलती थी । आज भी हिन्दू समाज की रचना प्राचीन ढंग की है ।

टयूटन लोगों के समान भारत वर्ष के गांवों में भी वृद्ध और अनुभवी लोगों की एक सभा रहा करती थी, जिसे पंचायत कहते थे । कुछ विद्वानों का मत है कि नवीन कानून बनाने का कार्य ही इस सभा के जिम्मे था । किन्तु यह उन का भ्रम है । वह नवीन कायदे नहीं बनाती थी, वरन परम्परागत रूढ़ी को प्रचार में लाने के लिए लोगों को

मजबूर करना ही उस का एक मात्र काम था। इन रूढ़ियों का उद्देश कुटुम्बों को व्यवस्थित रखना ही नहीं, वरन छोटे बड़े उद्योग धंधों को सुव्यवस्थित रूप से स्वतंत्रता पूर्वक चलाना भी था आज कल कुछ विद्वानों का मत है कि मध्ययुग में यूरोप में म्यूनिस्पेलटी के समान जो नागरिक संस्थाएं थीं वे सर्वांश में रोमन लोगों ही से ली गई थीं। परन्तु कुछ ग्रंथकार इस मत का खंडन करते हुए लिखते हैं कि रोमन बादशाहत के नष्ट करने वाली जंगली जरमन जातियों की रूढ़ियों के मिश्रण से ही उन की उत्पत्ति हुई थी।

यूरोप के अधिकांश नगर प्रारंभ में टयूटन ग्राम मंडलों के अधीनस्थ कृषि क्षेत्र ही थे। और तब धीरे २ अन्य कारणों से इन का महत्व बढ़ गया—वे नगरों में परिणत हो गए। तथापि हम यह भी कह देना योग्य समझते हैं कि अधिकांश नगर अन्य रीतियों से भी अस्तित्व में आए हैं। भारत वर्ष के बहुत से नगर प्रारंभ में छोटे २ खेड़े ही थे। कई खेड़े प्रसिद्ध २ राजाओं की छावनियों ही के कारण

बढ़े हैं। हिन्दू और मुगल सम्राटों एवं राजाओं की स्थिति यूरोप के राजकर्त्ताओं की स्थिति से बिलकुल भिन्न थी। उनकी राष्ट्र मर्यादा अनिश्चित होने और सदा युद्ध होते रहने से प्रजा पर कर का बोझ ज्यादा पड़ता था। खेती ही भारत वासियों की एक मात्र सम्पात्ति है। अतएव खेती की पैदावार का अधिकांश करके रूप में दे देने पर किसानों के पास अपने निज के निर्वाह के लिए पैदावार का बहुत थोड़ा भाग रह जाता था। लाचार उन्हें साल के आधे से अधिक दिन आधी भूक काट कर रहना पड़ता था। शिल्पकार आदि कारीगर लोग वहीं जाकर बस जाते थे जहाँ कि राजा रहता था। इस प्रकार जंगम मूलधन पर अवलम्बित रहने वाले उद्योग धंधे राज धानियों में ही अधिक चलते थे। और यही कारण है कि प्राच्य देशों की राज-धानियों का महत्व बहुत बढ़ गया था। उस जमाने में वही स्थान राजधानी माना जाता था, जहाँ राजा अपनी सेना सहित निवास करता था। या यों कहिए कि छावनी ही राजधानी मानी जाती थी। अतएव छावनी के उठते ही राजधानी भी बदल जाती थी और तब वह नगर उध्वस्त

हो जाता था। भारत वर्ष में ऐसे नगरों की कमी नहीं है। है। सकल नगरी ललाम भूत दिल्ली ही इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है। महाराज युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ आज ऊजड़ पड़ी है। तदनन्तर भिन्न २ समय में हिन्दू, शक, बौद्ध, गुप्त, मुसल्मान और अंगरेज बादशाहों ने इसी इन्द्र-प्रस्थ के पास ही पास अनेक वार नवीन नगर बसाए। इस समय दिल्ली—इन्द्र-प्रस्थ—पैंतालीस मील भूमि पर फैला हुआ है। वाराणसी का भी बार २ स्थानान्तर होता रहा है। यह एक सर्व सम्मत बात है कि नगर जितना ही प्राचीन होगा उस पर संकट भी उतने ही अधिक आवेंगे।

राजधानी या छावनी के उठ जाने से सब ही नगर उध्वस्त न हो जाया करते थे। कई कारणों से उस नगर में कुछ कारखाने जम से जाते थे जिस से वे वहां स्थायी रहते और ऐसी दशा में राजधानी के उठ जाने पर भी नगर उध्वस्त नहीं हो पाता था।

बड़े नगरों की उन्नति का इतिहास ही देश की आर्थिक उन्नति का इतिहास है। खेड़ों के नगर में परिवर्तित होने तथा

नवीन नगरों के निर्माण होने के तीन मुख्य कारण हैं:—
(१) व्यापार का सुभीता (२) फौज की छावनी और (३) क्षेत्र का महात्म्य। और इसके आधार पर हम यूरोप और भारत वर्षके नगरों को व्योपारी, फौजी और धार्मिक वर्गों में बांट सकते हैं। यूरोप में—खासकर इंगलैंड में, प्रथम वर्ग के नगरों की अधिकता है। भारत वर्ष में दूसरे वर्ग के नगरों का प्राबल्य है और इस वर्ग के अधिकांश नगर मुसलमानों के शासन काल में ही निर्माण हुए हैं। तीसरे वर्ग के नगर तो सब देशों में पाये जाते हैं। भारत के पैठण, बुरहानपुर, आगरा, नाशिक आदि नगर प्राचीन काल में व्यापार के कारण ही प्रसिद्ध हुए थे। आज भी नष्ट कला कौशल के अवशेष के बल परही भारत में इनका नाम प्रसिद्ध है। ग्वालियर—लसकर, फौजी वर्ग का नगर है। आज कल अंगरेज सरकार के कैंटुन्मेंट या कॅम्प को लगे हुए नगर भी इसी वर्ग के हैं। इंगलैंड के बरो (Borough) वर्ग (Burgh) आदि नाम धारी नगर भी इसी वर्ग के हैं। तीसरे वर्ग के नगर भारत में बहुत हैं। पवित्र नदियों के संगम पर एवं किसी प्रसिद्ध देवालय के पास बसे हुए नगर और पौराणिक कथाओं के कारण प्रसिद्धी पाए

हुए नगर और गांव भारत में असंख्य हैं। आवहवा आदि अन्य कारणों से नगर स्थापित होते हैं किन्तु इस प्रकार बसे हुए नगरों की संख्या बहुत ही कम है।

अभी हमें ग्राम मंडलों के ताबे की परती अर्थात् सर्व साधारण जमीन पर विचार करना है। यूरोप और हिन्दुस्थान में सर्व साधारण जमीन को भिन्न २ कारणों से महत्व दिया जाता है। टयूटन लोग सार्वजनिक जंगलों को चरणोई के कारण महत्व देते थे और चरागाह सुरक्षित रखने की पद्धति के कारण उन्हें लाभ भी हुआ होगा। कारण बाद में उन्होंने चरागाहों का खेती के लिए दिया जाना बंद कर दिया था। परन्तु भारत वासी शाकाहारी हैं। उन के मत से पशु कृषि के साधन रूप हैं। अतएव भारत वर्ष में चरागाहों को उतना महत्व नहीं दिया जाता। यहां परती जमीन जोत कर खेती करने की प्रथा है। परती जमीन भिन्न २ ग्रामों की मालकी की जमीन है और लोग मौका पाते ही उसे जोतने बोने को सदा तैयार रहते हैं। सब ग्राम संस्थाएं स्वतंत्र थीं; किन्तु कभी २ राजा जंगलों पर

अपना हक जमाने लग जाते थे । इसी आधार पर बंदोवस्त Settlement के वक्त जंगल कम कर अंगरेज सरकार ने बंजड़ जमीन ग्राम समूहों को बांट दी । इंगलैंड के राजा भी 'विटान' सभा की सम्मति से और कभी २ बिना सम्मति क लोगों को जंगल जागीर या इनाम में दे दिया करते थे । जिमींदारों को जंगल सम्बंधी कई अधिकार दे दिए गए थे, जिन से ' फ्यूडल सिस्टम ' (सैनिक सेवा पद्धति) की स्थापना होने में बहुत कुछ सहायता मिली ।

टयूटन लोगों में प्रत्येक समूह में प्रौढ़ व्यक्तियों की एक २ सभा रहा करती थी । इंगलैंड में प्रत्येक खेड़े की सभा को ' विलेज मोट ' या फोकमोट (Village-Mote or folk-Mote) संज्ञा दी गई थी । कई खेड़ों के मिल जाने से जिला बनता था । और जिले की सभा को 'शायर मोट' (Shire-Mote) कहते थे । सारे देश की सभा को ' विटानेगिमोट ' (Witanegemote) नाम दिया गया था । आलफ्रेड-दि ग्रेट के शासन काल तक इंगलैंड में यह प्रथा प्रचलित थी । और तब धीरे २ वह नाम शेष होगई

और उस का स्थान 'पार्लमेंट' ने ग्रहण कर लिया। भारत वर्ष की पंचायत भी उक्त सभाओं से साम्य खाती है। परन्तु वह भी सर्वत्र नहीं पाई जाती। कई खेड़ों में पटेल ही सब काम काज की व्यवस्था करता है और वही झगड़े भी तोड़ता है। पटेली का हक परम्परागत है परन्तु कहीं २ पटेल चुने भी जाते हैं। पटेल अकसर कुटुम्ब-विशेष के ज्येष्ठ व्यक्ति को ही चुनते थे। परन्तु चुनते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि उस में कोई दुर्गुण तो नहीं है। जिन प्राचीन गांवों में ग्राम संस्थाएं ज्यों की त्यों बनी हैं और जहां संस्था के कुटुम्ब के अधिकार समान थे वहां पंचायत को ही सब अधिकार थे। पंचायत के सदस्य लोक नियुक्त ही होते थे।

भारत में जहां कहीं ग्राम संस्थाएं पूर्णावस्था में पाई जाती हैं, वहां उन में सामान्य सादृश्य पाया जाता है। तथापि सूक्ष्म अवलोकन पर से पाया जाता है कि उनकी रचना मिश्र है और उनमें भिन्न २ कामों के लिए भिन्न २ अधिकारी रहते हैं। वृद्ध व्यक्ति ही पंचायत के सभासद हो सकते थे।

भारत वर्ष में सारे प्रान्त का कारोबार चलाने के लिए भिन्न संस्थाएं न थी । इसका कारण यह है कि भारत वासी युद्धप्रिय नहीं हैं । टयूटन लोगों के इतिहास से पता चलता है कि कभी कभी तलवार पकड़ कर गांव के सब लोगों को लड़ाई पर जाना पड़ता था । परन्तु भारत में यह बात बहुत कम पाई जाती है । राजाओं के जुलम से दुखी हो प्रजा युद्ध में प्रवृत्त नहीं होती थी । भारत की ग्राम-संस्थाएं जुलमी राजाओं और उनकी वैतनिक सैना क अत्याचार को चुपचाप सहती आई हैं । इसी से प्रचीन काल में भारत वर्ष में तरुण लोगों को अधिक महत्त्व न दिया जाताथा । गांव के अधिकांश युवक सेवा में भरती होने के लिए अन्यत्र चले जाते थे । ग्राम पंचायत के लिए तो वृद्ध और अनुभवी लोगों की जरूरत होती थी और यही लोग गांव में रह भी जाते थे ।

भारत वर्ष के कृषक समूहों की रचना परि पूर्ण है । अतः उन के सब व्यापार स्वतंत्रता पूर्वक चल सकते हैं । उन में सब प्रकार के धंधों के लोगों का समावेश किया गया है । अतएव उन्हें दूसरों पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ता ।

गांव की व्यवस्था के लिये पटेल या पंचायत रहती थी। पंचायत में सभी धंधे के लोगों का समावेश किया जाता था।

गांव की व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने के लिए अन्य कामदार (village-servants) भी नियुक्त किए जाते थे। ये ग्राम भृत्य गांव के चाकर और अवयव माने जाते थे। उन्हें अपनी चाकरी के लिए वेतन के बदले में कुछ जमीन दे दी जाती थी। चमार, नाई, सुतार, लुहार आज भी किसानों का काम करते हैं, और उन्हें फसल काटते समय या खलिहान में अनाज देने की प्रथा प्रचलित है।

ग्रैंड उफ साहब ने ग्राम भृत्यों की नामावली में सुतार, लुहार, चमार, चौकीदार, बलाई, कुम्हार, नाई, धोबी, पुजारी, ज्योतिषी, भाट और मुल्ला के नाम दिए हैं। विलसन साहब ने अपनी Glossary of Indian Terms में पटेल, पटवारी, चौधरी (साहूकारों का नायक) पोतदार (गांव का खजांची), रोकड़िया (हिसाब रखने वाला), नाई, धोबी, पुजारी, सुतार, कुम्हार, बलाई और ज्योतिषी के नाम

दिए हैं । यह सूची उफ साहव की सूची से भी पुरानी है ।

गुजरात, महाराष्ट्र राजपूताना आदि भिन्न २ प्रान्तों में ग्राम भृत्यों की नामावली में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य पाया जाता है । गुजरात में वैद्य भी ग्राम भृत्यों में गिना जाता है । दिल्ली प्रान्त में भिस्ती, दर्जी, पिंजारा और रंगरेज भी शामिल कर लिए गए हैं । सारांश में गांव की जरूरत के अनुसार ग्राम भृत्यों की संख्या भी कम ज्यादा हो सकती है। कहीं २ तेली तमोली और रंडी भी ग्राम-भृत्यों में गिने जाते थे ।

कर्नल स्लीमन ने अपनी पुस्तक Rambles of an Indian officials में याजक, सुतार, लुहार, लेखक, रजक, कुम्हार, चौकीदार, नाई, चमार आदि के नाम दिए हैं ।

मध्य भारत तथा हिन्दुस्तान में गर पकड़ी (मंत्र के जोर से ओलों से फसल की रक्षा करने वाला) और भूम का (मंत्र बल से शेर आदि हिंसक जन्तुओं से मनुष्यों और

पशुओं की रक्षा करने वाला) ग्राम भृत्यों में गिने जाते हैं।

कहीं २ ज्योतिषी, साहूकार (महाजन), दूकानदार, हलवाई, जुलाहा और रंगरेज भी ग्राम भृत्यों में शामिल हैं। बहुत से संस्कृत ग्रंथों में ग्वाला, कसाई (ग्राम घातिन्), ग्रामप्रेश्य (village-messenger) आदि भी ग्राम भृत्या में गिने गए हैं।*

टयूटन ग्राम संस्थाएं भी इसी प्रकार सर्वांग पूर्ण और परमुखान पेक्षी थीं। उन में भी लुहार (smith), सुनार (goldsmith), सुतार (carpenter) राज (mason), गड़रिया (shepherd) टर्नर आदि शामिल थे।

भारत वर्ष के कई प्रान्तों में अन्त्यज लोगों का एक वर्ग है। इन्हें गांव से कुछ दूरी पर रहना पड़ता है। गांव से इन का निकट का सम्बंध है। कहीं २ तो इन्हें गांव में प्रवेश

* मेक्स मूलर कृत India, what can it teach us सफा २७१।

करने की भी मनाई है। ये संभवतः आर्य लोगों द्वारा जीते हुए जंगली लोगों के वंशज ही हैं। मद्रास प्रान्त में भी 'पंचम' नामक अंत्यज वर्ग है। अंगरेजी में इन्हें Pariah कहते हैं। यह शब्द 'परेय' का अपभ्रंश है। हिन्दू लोगों के चतुर्वर्णों में इनका समावेश नहीं होता अतएव इन्हें 'परेय' पंचम आदि नाम दिए गए हैं। उच्च वर्णों की नीच टहल करना ही इन बेचारों के भाग्य में बदा है। आज कल इन के सुधार के लिए प्रयत्न किए जारहे हैं।

चौथा परिच्छेद ।

भारतीय ग्राम रचना ।

त परिच्छेदों में प्राच्य और पाश्चात्य ग्राम संस्थाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर आए हैं। अब इस परिच्छेद में भारतीय ग्राम रचना एवं ग्राम व्यवस्था पर हिन्दू पंचायतों पर, विचार किया जायगा मनुस्मृति आदि ग्रंथों में ग्राम रचना एवं पंचायतों पर साविस्तार विवेचन नहीं पाया जाता है। तथापि कई ग्रंथों में इस सम्बंध में थोड़ा बहुत विवेचन पाया जाता है। हम संक्षेप में ही इस विषय पर लिखेंगे।

श्रीमद् भागवत में एक स्थान पर लिखा है कि ध्रुव वंशीय महाराज वेन के पुत्र प्रथु ने भारत वर्ष में वसतिस्थान और ग्राम रचना की व्यवस्था का सूत्रपात किया, इस ग्रंथ के अठारहवें अध्याय स्कंध ४ में लिखा हैः—

चूर्णयन्स्व धनुः कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ।

भूमंडलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥२९॥
अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिताः।
निवासान्कल्पयां चक्रे, तत्र तत्र यथाऽर्हतः॥३०॥
ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानिच ।
घोषान्व्रजांश्च शिविरान नगरान् खेट खर्वटान् ३१
प्राक् प्रथोरिह नैवेषा पुरग्रामादि कल्पना ।
यथा सुखं वसन्तिस्म तत्र तत्राऽकुतो भयः ॥३२॥

अर्थात् महाराज वेन के पुत्र प्रथु ने अपने धनुष्य से पर्वतों को चूर्ण कर भूमंडल को बराबर किया। तदनन्तर पितृवत् प्रथु राजाने अपनी प्रजा के निवासार्थ योग्य व्यवस्था की। उन्होंने जहां तहां गांव, नगर, अनेक प्रकार के दुर्ग, सेना के आवास, गोप ग्वालों के रहने के लिए स्थान, गाय गोठे आदि की योजना की। महाराज प्रथु के पहले इस प्रकार की व्यवस्था का पूर्ण अभाव था। इस व्यवस्था के कारण प्रजा निर्भय हो सर्वत्र शान्ति और सुख पूर्वक निवास कर रही है।

इन श्लोकों को पढ़ने से साफ मालूम होता है कि

महाराज प्रथु के पहले भारत वर्ष में व्यवस्थित वसति क्रम का अभाव सा था।

महाराज प्रथु का नाम ऋग्वेद में भी आया है। मनु महाराज ने भी आपके उत्कृष्ट शासन की खूब प्रशंसा की है। ऋग्वेद का रचना का काल ४००० वर्ष विक्रम संवत पूर्व से २५०० वर्ष विक्रम संवत पूर्व तक माना गया है। इस पर से अनुमान किया जा सकता है कि भारत में ग्राम रचना विक्रम संवत से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व अास्तित्व में आई थी।

अब यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सब से पहले किस प्रान्त में ग्राम रचना की गई थी। इस सम्बंध में स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। तथापि अनुमान किया जाता है कि ग्राम रचना ब्रह्मावर्त प्रान्त में शुरू की गई थी। महाराज प्रथु की राजधानी गंगा और यमुना की मध्यवर्ती अन्तर्वेद नामक पुराय भूमि पर स्थित थी।

प्राचीन ग्रंथों में बहुत से स्थानों के नामों के अन्त में अरण्य, वन क्षेत्र आदि शब्द पाए जाते हैं, यथा—नैमिषारण्य,

चम्पकारण्य, अद्वैतवना, खांडव बन, परशुराम क्षेत्र, राम क्षेत्र आदि। इन नामों पर से अनुमान किया जाता है कि इन स्थानों को बसाने वाले व्यक्ति के नाम के साथ ही उक्त अरण्यादि शब्द लगाए गए हैं।

किसी स्थान पर बसती करने के लिए चार पदार्थों की विपुलता पर विचार करना पड़ता है। ये चार पदार्थ हैं। अन्न, वस्त्र, जल और छाया। भारत वर्ष में इन सब का बाहुल्य है। सारे देश में अनेकों नदी नाले और प्रवाह प्रवाहित होते हैं। भांति २ के अनाज, कपास, रेशम, ऊन आदि अन्न वस्त्र के साधनों की भी कमी नहीं। और मकान बना कर छाया की व्यवस्था भी सर्वत्र की जा सकती है।

गांव स्थापित हो जाने पर लोगों ने जमीन, खेत इत्यादि की व्यवस्था करली। प्रारंभ में जमीन की बंटनी किस प्रकार की जाती थी, इस सम्बंध में पहले लिखा जा चुका है। अब ग्राम व्यवस्था पर विचार किया जायगा।

प्राचीन काल की ग्राम व्यवस्था को देख कर कहा जा सकता है कि प्रत्येक गांव एक छोटा सा राज्य था। पटेल वहां का राजा, पटवारी प्रधान एवं ग्राम भृत्य अन्य कर्मचारी माने जा सकते हैं। गांव के उत्पन्न पर इनका सबसे अधिक हक था। कुम्हार, नाई, धोबी, भंगी आदि दूसरे वर्ग के ग्राम भृत्य थे एवं जोशी, भाट, मुल्ला और दमामी तीसरे वर्ग के। इन्हें गांव के लोग वार्षिक कुछ न कुछ दिया करते थे। इन के अलावा बड़े २ कसबों में, लोगों की आवश्यं-कतानुसार तेली, तमोली, माली, दरजी, पोतदार आदि भी रहा करते थे। अधिक जन संख्या वाले गांवों में व्यापारी लोग भी जा बसते थे। ये लोग गांव वासियों को उन चीजों के पुराने का धंधा करते थे जो उस गांव में नहीं मिलती थीं। बहुत से गांवों में साप्ताहिक और अर्द्ध साप्ताहिक हाट लगेत थे। उस रोज़ आस पास के गांवों के लोग हाट वाले गांव में जाकर आवश्यक पदार्थ खरीदा करते थे।

प्राचीन काल में खेती ही लोगों का एक मात्र धंधा था। खेती के औजार तैयार करते उनकी दुरुस्ती आदि के

लिए उक्त वतन दारों की व्यवस्था की गई थी। ग्राम निवासियों की आवश्यकतानुसार गांव के वतनदारों की संख्या कम ज्यादा हुआ करती थी। इस सम्बंध में हम किसी गत परिच्छेद में लिख आए हैं। यदि वतनदारों की व्यवस्था न की गई होती तो लोगों को बड़ा कष्ट होता। हल आदि के टूट जाने पर उसकी दुरुस्ती के लिए किसी दूसरे गांव से सुतार बुलवाना पड़ता जिससे काम में हर्ज होता और मजदूरी भी ज्यादा देनी पड़ती।

हिन्दू पंचायतें:—भारत वर्ष की प्राचीन रचना हजारों वर्ष से अस्तित्व में है। अनेक राज्यक्रान्तियां हुई, कई राज्य वंस एक एक करके विलीन होगए किन्तु हमारी ये सस्थाएं, किसी न किसी रूप में अब तक विद्यमान हैं।

प्रत्येक गांव की अन्तर्व्यवस्था नामक लोक सभा के हाथ में थी। आपसी कलह तोड़ना, सफाई रखना आदि काम इस सभा के ज़िम्मे थे। अति प्राचीन काल से भारत वर्षमें इन संस्थाओं का अस्तित्व है। मेगस्थनीज़ ने अपने प्रवास वर्णन में भारतीय पंचायतों का वर्णन किया है। उसने पंचायत शब्द

के लिए Pentads शब्द का उपयोग किया है । मेन साहब का मत है कि इस सभा में पांच ही सभासद रहा करते थे और संभवतः इसी लिए इस सभाको यह नाम दिया गया है। संभव है कि जब गांव बहुत ही छोटा रहा होगा, पंचायतों के सदस्यों की संख्या भी कम रही होगी । किन्तु ज्यों ज्यों गांव के निवासियों की संख्या बढ़ती गई पंचायत के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती गई होगी ।

अष्टाध्यायी के सूत्र ' ग्रामः शिल्पीनि ' पर से सिद्ध होता है कि पाणिनी के जमाने में भी पंचायतों का अस्तित्व था । अष्टाध्यायी के " ग्राम कोटाभ्यांचतक्ष्णः " सूत्र में सुतार और कोटतक्ष (स्वतंत्रकारीगर) में स्पष्ट भेद बताया गया है । पातंजल भाष्य में 'एचइग्घ्न स्वादेशे' सूत्र के भाष्य में पंचकारुकी शब्द उदाहरण के तौर पर दिया गया है । नागोजी भट्ट ने अपने विवरण ग्रंथ में उसी की वास्तव्यः कर्तारितव्यान्तः कुलाल कर्मारवर्धकि नापित रजकः पंचकारुकी व्याख्या की है । अर्थात् जिस गांव में कुम्हार, लुहार, सुतार, नाई, धोबी ये पांच रहते हों, उसे ही पंचकारुकी

कहना चाहिए। इस से यह नहीं मान लेना चाहिए कि इन पांच कारीगरों के सिवा अन्य लोग उस गांव में रहते ही न हों। अमर कोष के रामाश्रयी टीकाकार ने 'तक्षाच तन्तु वायश्च, नापितो रजक स्तथा, पंचमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनोमतः' नामक कारु पंचक दिया है। अतः यह माना जा सकता है कि पंचकारुकी और पंचायत एक ही है और यही पांच मूल ग्राम भृत्य हैं। मद्रास प्रान्त में 'पंचाल' नामक एक जाति है उस में भी उक्त पांच कारीगरों का समावेश किया गया है।

पंच या पंचायत शब्द से प्रथमतः यही धारणा होती है कि प्रारंभ में उस में पांच ही सभासद रहा करते थे। किन्तु इस सम्बंध में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते और न इस बातका ही पता चलता है कि पंच और पंचायत शब्द की सृष्टि कैसे हुई। पेशवा के जमाने में महाराष्ट्र में पंचायत में दो से लगा कर ५० तक सभासद रहा करते थे। जहां जहां प्राचीन ग्राम संस्था थोड़ी बहुत कायम है, वहां पंचों की संख्या नियमित नहीं पाई जाती। अति प्राचीन काल से लोगों का

विश्वास है कि विषम संख्या में कुछ विशेष गुण है। और इसी लिए पंच संभवतः तीन या पांच रहा करते होंगे। संभव है कि मेन साहब का तर्क सही हो। इस तर्क पर से एक कल्पना और संभवनीय मालूम होती है।

पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन किया जाता था। अतएव उस में सब वर्ण के प्रतिनिधियों का होना आवश्यक था। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण और तदितर अन्य जाति के लोग पांचवें वर्ण में गिने जाते हैं। वेद में भी 'पंच चर्षणी' 'निषाद पंचमः वर्णाः' आदि उल्लेख पाए जाते हैं। इस प्रकार पंच वर्णनात्मक लोगों की सभा होने के कारण इसे पंचायत नाम दिया गया होगा। यदि यह व्युत्पत्ति सत्य ठहरी, तो मेन साहब का विधान गलत मानना पड़ेगा।

पंचायत न्याय करती और व्यवस्था रखती थी। कहें तो कह सकते हैं कि इंगलैंड की 'पार्लमेंट' सेक्सन लोगों की 'व्हिलेजमोट' और भारत वर्ष की 'पंचायत' सहोदर भगिनियां हैं।

न्यायाधिकार ।

स्मृतियों में प्राचीन न्यायपद्धति के नियम पाए जाते हैं। उन पर से पता चलता है कि ग्राममंडलों का न्याया-धिकार अनियंत्रित था। आज कल यह प्रतिपादित किया जाता है कि अधुनिक ज्यूरी की पद्धति के आदिजनक अंगरेज ही हैं। परंतु यह बिलकुल गलत है। प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह पद्धति सर्वत्र प्रचलित थी। उस जमाने में न्याय जैसे महत्व के काम को एक ही व्यक्ति पर छोड़ देने की बात बुरी समझी जाती थी। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि प्राचीनकाल से चला आने वाला और इंगलैंड के सुप्रसिद्ध 'मैग्नाचार्य' में लिखा हुआ ज्यूरी का हक तथा भारतीय प्रचलित न्यायपद्धति का उगम एक ही है। यह उगम प्राचीन ग्रामसंस्था और उनका न्यायाधिकार है इतिहासकारों का मत है कि प्राचीनकाल में स्वर्गीय लोग ही अपने वर्ग के मनुष्यों के झगड़े तोड़ते थे। तदनन्तर राजसत्ता बढ़ती गई और धीरे २ राजा या उसके प्रतिनिधि द्वारा इंसाफ करने की पद्धति प्रचलित हो गई। भारतवर्ष

को भी यह सिद्धान्त लागू होता है। प्राचीन धर्मग्रन्थों में तीन राजनियुक्त न्यायाधीशों और तीन समूहात्मक न्यायाधीशों के न्यायस्थानों का वर्णन पाया जाता है। राजा ही सर्व श्रेष्ठ मानां जाता था। राजा की सभा ही आखिरी अपीलेंट कोर्ट थी। राजा के बाद प्राड़विवाक और धर्माध्यक्ष का नम्बर था। धर्माध्यक्ष का अधिकार आज कल के डिस्ट्रिक्ट जजों के अधिकार से कम न थे। यह नियामित स्थान पर कचहरी करता था। प्रत्येक गांव में एक एक न्यायाधिकारी रहा करता था इन न्यायाधीशों को सलाह देने के लिए ३ से लगा कर ७ तक मन्त्री रहा करते थे। इस पर से यह साफ मालूम होता है कि प्राचीन भारतवासी यह बात भले प्रकार जानते थे कि न्याय जैसे महत्व के काम को एक ही व्यक्ति की खुशी पर छोड़ना हानिकारक है। शेष तीन न्याय सभाएं तो सार्वजनिक थीं। ये न्याय सभाएं थीं—कुल सभा, ज्ञाति सभा और ग्राम सभा और उन्हें अनुक्रम से कुल, श्रेणी और पूग संज्ञा दी गई थी। झगड़ा होने पर सब से पहले कुल अर्थात् वादी प्रतिवादी के रिश्तेदारों की सभा उस पर विचार करती थी। तदनन्तर

उस जाति या धंधे के लोगों की सभा में अपील की जाती थी और अन्त में यह झगड़ा पूग में—ग्राम सभा में पेश होता था (याज्ञ० व्यव० ३०) ग्राम सभा में भी झगड़ा न टूटने पर प्राड्विवाक की सेवा में प्रार्थना की जाती थी और तब राजा की सभा में स्मृतिचन्द्रिका में गण, वर्ग आदि दस न्याय स्थानों का वर्णन किया है। बृहस्पति का मत है कि पूग प्रभृति समूहात्मक सभाओं को राजा की आज्ञा से ही न्याय करने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु 'वीरमित्रोदय' के कर्त्ता ने बृहस्पति के मत का खंडन करते हुए उन सभाओं के नैसर्गिक अधिकार को स्थापित किया है। ग्राम सभा पर अपील सुनने का अधिकार प्राड्विवाक और राजा को ही प्राप्त था। किन्तु वे खुद कुछ नहीं कर सकते थे। उनके अधिकार नियंत्रित थे। उन्हें अपने २ मंत्रियों से सलाह लेनी पड़ती थी*। आधुनिक न्याय-सभा

---

* Life and essay of H. T. Colebroke Vol II Page 490-527.

सन् १८२६ में कोलब्रुक साहब ने रायल एशियाटिक सोसाइटी में

की रचना पर से यही मालूम होता है कि वह ग्राम मंडल का छोटा सा प्रतिबिम्ब है। इस न्याय सभा की उत्पत्ति संभवतः प्राचीन परिषद से ही हुई होगी। यद्यपि उपलब्ध धर्म ग्रन्थों में परिषद को धार्मिक और नियमित रूप दे रखा है। तथापि माना जा सकता है कि प्राचीन काल में प्रत्येक लोक समूह में परिषद नामक एक आद्य लोक सभा अवश्य ही रहा करती होगी। बृहदारण्य कोपनिषद में लिखा है—'श्वेतकेतुर्हारुणेयः पांचालानाम् परिषद मा जगाम्' इसका अर्थ है:—अरुणि पुत्र श्वेत केतु पांचाल जाति की परिषद में गया। पाराशर स्मृति से पता चलता है कि प्रारंम्भ में परिषद के सदस्यों की संख्या अधिक थी। किन्तु बाद में वह धीरे २ कम होती गई। प्रो० मेक्समूलर ने अपनी पुस्तक में यह बात भली प्रकार दिखाई है कि प्राचीन परिषद किस प्रकार संकुचित

एक निबन्ध पढ़ा था उसके परिशिष्ट में प्राचीन हिन्दू न्यायपद्धति का सविस्तर वर्णन दिया है हमें यह निबन्ध न मिल सका, अतएव उक्त वर्णन यहां न दे सके।

होती गई थी ।*

परिषद् शब्द भी अति प्राचीन है। संस्कृत परिवेश और अंगरेजी Parish शब्द से इसका साम्य है । अंगरेजी Session लैटिन Sedio और संस्कृत सद् शब्द इसी से बने हैं। प्राचीन परिषद् ग्राम मंडल का रूपान्तर और ग्राम पंचायत सभा का आद्यस्वरूप है ।

सर हेनरी मेन का मत है कि सार्वजनिक भूमि स्वामित्व पर ही ग्रामव्यवस्था का पाया रचा गया था । उसने अपने सिद्धान्त की पुष्टिके लिए तीन प्रकार की अवशिष्टरूढ़ियों का उल्लेख किया है। गांव के अधिकार की जमीन के विभाग उसके पुनः २ वितरण और उससे पैदा हुए झगड़ोंका निर्णय करना एवं अन्य व्यवस्था करनेकी सार्वजनिक रीति। इन तीन प्रमाणों द्वारा मेन ने यह सिद्ध किया है कि पूर्वकाल में ग्राम एक समूहात्मक व्यक्ति था। पहली दो रूढ़ियां अब लुप्त होगई हैं। तथापि कहीं कहीं उनका अस्तित्व अब भी पाया जाता है ।

---

* प्रो० मेक्समूलर कृत A History of Sanskrit Literature पृष्ठ १२८३०

और तीसरी पर हम विचार कर ही चुके हैं। अंगरेजी राज्य स्थापित होने के पहले गांव के अधिकार की जमीन के तीन भाग सर्वत्र पाए जाते थे। यूरोप में जिस प्रकार 'टाउनमार्क' 'कामनफिल्स' और 'पाश्चर' नामक जमीन के तीन भाग पाए जाते हैं उसी प्रकार भारत वर्ष में भी 'ग्राम से व्याप्त भूमि' 'कृषि योग्य भूमि और 'चरणोई या जंगल' नामक गांव की जमीन के तीन भाग पाए जाते हैं। और इनका स्वत्वाधिकार न्यूनाधिक परिमाण में ग्राम वासियों में बांट दिया जाता था। कृषियोग्य भूमि के तीन भागों में विभक्त कर पुनः २ वितरण की प्रथा पर हम किसी गत परिच्छेद में सविस्तर विवेचन कर आए हैं।

बैडन पावेल साहब* का मत है कि मनुष्य जातिकी स्वाभाविक प्रकृति के कारण ही सब राष्ट्रों और जातियों में ग्राम मंडल का उदय होता है। आप के मत से ग्राम संस्थाएं मैदानों में—सम भूमि वाले प्रदेशों में ही, उत्पन्न

---

* Land systems of British India by B. N. Baden-Powel.

होती हैं। परन्तु आप का यह मत बिलकुल निर्मूल है। कारण कि हिमालय के पास, दक्षिणी पंचाब, कानड़ा, मलावार आदि पहाड़ी प्रदेशों में भी तो वे पाई जाती हैं। भारत वर्ष में पाई जाने वाली ग्राम संस्थाएं भिन्न २ प्रकार की हैं। अतएव यह नहीं माना जा सकता कि हिन्दू कायदों के समान सर्व साधारण उगम से ही उनकी उत्पत्ति हुई है। मनुष्य की समाज प्रियता एवं शत्रु से अपनी निज की रक्षा करने की आवश्यकता ही के कारण ग्राम समूहों का अस्तित्व में आना अधिक संभवनीय है। आर्य जाति की टोलियों के भारत वर्ष में आकर बसने के पहले यहां दो जाति के आदिम निवासी रहते थे। इन आदिम निवासियों में भी तो ग्राम संस्थाओं का अस्तित्व था। छोटा नागपुर और विंधाचल के पास वाले प्रदेशों में कोलेरियन (कोल) जाति के लोग पाए जाते हैं। इनकी भाषा में खेड़े को 'पन्हा' और नायक 'मांकी' या मंड कहते हैं। द्रविड़ लोगों में भी राजा रहा करता था। ग्राम की जमीन के अनेक खंड किए जाते थे। इन खंडों में से पहला राजा को, दूसरा ग्रामाधि पति को और तीसरा उपध्याय को दिया जाता था,

प्रत्येक गांव में 'मातो' या ग्राम लेखक रहा करते थे। हिसाब किताब रखने का काम ही इसके जिम्मे था।

ऊपर के विवेचन को पढ़ने से यह बात साफ मालूम हो जाती है कि आर्य लोगों के आने के पहले ही भारतवर्ष में ग्राम संस्थाओं का अस्तित्व था। सारांश में, बैडन पावेल साहब का मत है कि आर्य लोग अपने साथ ग्राम संस्था का कल्पना को नहीं लाए थे। परन्तु बाद में उन्होंने एक स्थान पर मेन साहब का सिद्धान्त कबूल कर लिया है। आर्य जाति विशेष बुद्धिमान और अधिक सभ्य थी। अतएव उन में ये प्रकार स्पष्ट दृष्टि गोचर होते हैं। और इसी के आधार पर आर्यों की ग्राम संस्था का प्राचीनत्व सिद्ध किया जा सकता है। बैडन पावेल साहब इस बात पर जोर देते हैं कि पुनः २ वितरण की प्रथा से एवं मंडलों के समूहात्मक स्वरूप से सर्व साधारण स्वामित्व सिद्ध नहीं होता। इस ग्रंथकार ने विभक्त (non-joint) और संयुक्त (joint) नामक गांवों के दो विभाग किए हैं जहां भूमि के अनेक मालिक हैं वहां विभक्त, और जहां सारे गांव का एक ही

मालिक है वहां संयुक्त गांव होने की कल्पना की गई है। पहला प्रकार अति प्राचीन है और दूसरा मुसलमान बादशाहों के जागीर इनाम आदि देने की प्रथा पड़ने पर जारी हुआ है। और इस पर से आपने यह सिद्धान्त निकाला है कि ग्राम मंडल अति प्राचीन है। परन्तु आधुनिक संयुक्त ग्राम और प्राचीन ग्राम मंडल एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं और हम दावे के साथ कह सकते हैं, बैडन पावेल ने इस बात पर स्वप्न में भी बिचार नहीं किया। संयुक्त ग्राम का रैयतवारी होना एक दम असंभव है। कारण वह कहता है कि इस रूपान्तर से जिन लोगों के हक मारे जायगे, वे कदापि स्वस्थ न बैठेंगे। परन्तु यह सोचना भ्रम मात्र है। इस के प्रमाण में हम इतना ही कहना काफी समझते हैं कि अंगरेज सरकार ने बम्बई और मद्रास प्रान्तों में ग्राम मंडलों को तोड़ कर ही रैयतवारी पद्धति शुरू की थी। किन्तु कुछ भी गड़ बड़ न हुई। सारे भारत वर्ष में जगह जगह खेड़ों में ग्राम संस्थाएं पाई जाती हैं। हम इन्हें सर्व साधारण मंडल माने बिना नहीं रह सकते। अन्त में बैडन पावेल साहब ने हिन्दू ग्राम मंडलों की, रशियन 'मीर' और

'स्विस' 'आलमेंड' से असाम्यता दिखलाते हुए लिखा है कि जर्मन, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं का संस्कृत भाषा से जितना साम्य है, उतना ही साम्य सब देशों की ग्राम संस्थाओं में भी है। मेन साहब ने भी तो यही लिखा है।

ग्राम मंडल का पुनरुज्जीवन।

अब हमें प्रस्तुत विषय पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार करना है। कई अंग्रेज कर्मचारियों ने हिन्दू ग्राम व्यवस्था की दिल खोल कर निंदा की है। गुडाइन नामक एक महाशय का मत है:—

On reviewing (Village system) we find no perticular rights or preveleges possessed by the body of the people, not office bearers, no independance or equality, no civil rights, such as the freedom of election, no principle of progressive liberty.* अर्थात् निरीक्षण करने पर यही मालूम होता है

---

*Mr. R. N. Gooddine's report on the village communities of Deccan, Page 28.

कि प्राचीन ग्राम संस्थाओं में ग्रामभृत्यों के सिवा, सर्वसाधारण को बिलकुल अधिकार नहीं। समता और स्वतंत्रता का बिलकुल अभाव है। निर्वाचन के समान राजकीय अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं और स्वातंत्र्य वृद्धि का एक भी साधन नहीं।

इस आक्षेप का लम्बा चौड़ा उत्तर देने की अपेक्षा दो सज्जनों के मत उद्धृत करना ही हम योग्य समझते हैं। इस से पाठकों को मालूम हो जायगा कि गुडाइन साहब का आक्षेप निर्मूल है।

भारत वर्ष के भूतपूर्व गवरनर जनरल लार्ड मेटकाफ अपने सन् १८३० के एक खलीते में लिखते हैं:—

The Village-communities are little republics having every thing they want within themselves and almost independent of any foreign relations. They seem to last when nothing else lasts, Dynasty after dynasty tumbles down, revolution succeeds revolution ; Hindu, Pathan, Moghal, Maratha, Sikh, English, all are masters in turn, but the

village communities remain the same. In times of trouble they arm and fortify themselves. An hostile army passes through the country; the village communities collect their cattle within their walls and let the enemy pass improvoked + + + + This union of village-communities, each one forming a state in itself, has, I believe, contributed more than any other cause to the preservation of the people of India, through all the revolutions and changes which they have suffered and is in high degree conducive to their happiness and to the enjoyment of a great portion of freedom and independance.* अर्थात् भारतवर्ष के ग्राम मंडल छोटे २ राज्य हैं ये आप अपनी आवश्यकताओं को पूरी कर सकते हैं। अतएव उन्हें किसी वस्तु के लिए दूसरों पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ता। अन्य संस्थाएं नष्ट होगईं किन्तु ये अब तक सजीव हैं। एक के बाद एक कई राजघराने नष्ट हो गए। कई राज्य क्रान्तियां हुईं।

*Elphinston's History of India page 68.

हिन्दू, पठान, मुगल, मराठे, सिख और अंगरेजों ने अनुक्रम से देश जीता, किन्तु ग्राम मंडल ज्यों के त्यों बने रहे। शत्रु के आक्रमण के समय प्रत्येक गांव शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो तैयार रहता है। जब शत्रु गांव के पास से गुजरता है तो वे अपने पशु शहर पनाह में बंद कर देते हैं और उसे बिना छेड़ छाड़ किए ही जाने देते हैं। + + + + इस ऐक्य के कारण ग्राम मंडल छोटे २ राज्य मालूम होते हैं। इसी से वे सब विघ्न बाधाओं को पार कर केवल अस्तित्व में ही न रहे किन्तु उनके सुख और स्वातंत्र्य के लिए यह ऐक्य बहुत काम आया।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखते हैं:—

one foreign conqueror after another has swept over India, but the village municipalities have stick to the soil like their own kush grass.

इसका सारांश भी ऊपर लिखे हुए अवतरण से मिलता जुलता है।

ऊपर के अवतरणों को पढ़ने से साफ मालूम होता है कि सैकड़ों वर्षों से विदेशी लोगों की सत्ता के भार के नीचे दबे रहने पर भी इन्हीं ग्राम मंडलों की बदौलत हिन्दू जाति का अस्तित्व बना रहा। ग्रीक राष्ट्र स्वातंत्र्य प्रिय देश था। किन्तु एक बार रोमन लोगों के अधिकार में जाते ही वह नाम शेष हो गया। भारत वर्ष पर अनेकों विदेशी राजाओं के आक्रमण हुए किन्तु हमारा ग्राम मंडल, हमारा धर्म, और हमारी रूढ़ी ज्यों की त्यों बनी रही। और इस का कारण भी है। ग्रीक लोगों में स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक ही सभा थी किन्तु भारत वर्ष में तो प्रत्येक ग्राम मंडल अपनी २ रक्षा के लिए कमर कसे सदा तैयार रहता था। बलवान से बलवान शत्रु भी इनका नाश नहीं कर सका। एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समूह के हाथ में अधिकार सूत्र रहने से लाभ तो जरूर होता है किन्तु एक अधिवार सर्वस्व नष्ट होने की बारी आजाती है। यदि अधिकार थोड़ा २ भिन्न २ संस्थाओं के हाथ में हो, तो सब का सब नष्ट नहीं हो पाता। और यही कारण है कि अनेकों हमले और राज्य क्रान्तियों के होने पर भी भारतीय ग्राम मंडलों

का प्राचीन स्वरूप नष्ट नहीं हो पाया ।

पाश्चात्य देशों में गरीबी के कारण लोगों को विशेष कष्ट सहना पड़ते हैं। श्रम जीवियों के कष्ट निवारणार्थ यूरोप के देशों में अनेकों संस्थाएं स्थापित की गई हैं। परन्तु भारतवर्ष में इस ढंग की संस्थाओं का एक प्रकार से अभाव सा है हमारी ग्राम व्यवस्था ने, क्या रंक क्या राव, सब के हृदयों में दुख के समय सहायता करने की बुधि जागृत कर रखी थी। और यही कारण है कि भारत वर्ष में धनी और गरीब वर्गों में बैर भाव बहुत कम पाया जाता है।

आधुनिक काल में सम्पति वैषम्य को दूर करने के लिए यूरोप में 'कम्यूनिझम' 'सोशियालिझम' 'निहिलिम' आदि संस्थाओं का जन्म हुआ है। परन्तु आलस का प्रतिबंध कर गुणानुरूप धन विभाग करने की उलझन को वे नहीं सुलझा सके हैं। भारती ग्राम संस्थाओं ने उद्दिष्ट हेतु साधकर इस उलझन को सुलझा लिया था।

कई अंगरेज कर्मचारियों का मत है कि भारतवर्ष की

साम्पतिक अवस्था दिन पर दिन सुधरती जा रही है और वे अपने वचन की सत्यता सिद्ध करने के लिए विदेशी व्यापार के निर्गत आयत के अंक पेश करते हैं। परन्तु उनका यह कथन एक दम निर्मूल है। भारत की साम्पतिक अवस्था का निरीक्षण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कहना पड़ेगा कि वह दिन पर दिन गरीब होता जारहा है प्रोफेसर राधाकृष्ण झा अपनी 'भारत की सम्पितिक अवस्था' नामक ग्रथ में भारत की आर्थिक अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए ६१६–६१७ सफा में लिखते हैं—

"सन् १८७१ में स्वर्गीय सर दादा भाई नौराज़ीने हिसाब लगाकर देखा था कि हम लोगों की औसत आमदनी आदमी पीछे २३) रुपया साल है। उसके बाद लार्ड क्रोमर ने सन् १८८१ में बताया कि यह आमदनी २७) रुपया साल थी × × × × × × आजकल प्रायः डेड़ आना रोज़ की औसत आय पर भारत वासी जीते हैं।"

भारत की वर्तमान अवस्था का वर्णन करते हुए कविवर मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं—

जब अन्य देशों के कृषक सम्पत्ति में भरपूर हैं ।
लाते कि जिनसे आठ रुपया रोज के मजदूर हैं ॥
तब चार पैसे रोज ही पाते यहां कर्षक अहो ।
कैसे चले संसार उनका किस तरह निर्बाह हो ॥

भारतीय विद्वान ही नहीं पाश्चात्य विद्वान भी यह बात मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि अंगरेजी शासन काल में भारत दरिद्री होता जारहा है । एक अमेरिकन ग्रंथकार लिखते हैं:—

The unrest in India in 1919 has far deeper causes-causes inherent in the history of the past century of exploitation, oppression, and failure to give India material compansation to justify alien rule. × × × × In 1850 the average earning of an Indian was four cents a day. This sum fell to three cents a day in 1882 and to one and a half cents a day in 1900. The majority of the population of India goes through life without ever having enough to eat. This state of affairs did

not exist before England started to drain India of her wealth. It does not exist in the neighboring equally densely populated countries that are not directly under the British Rule.*

अंगरेजी राज्य के स्थापति होजाने पर धीरें धीरे भारत वर्ष की ग्राम संख्याओं की संयुक्त शक्ति नष्ट होगई जिससे गरीवी की आग अधिक कष्ट प्रद मालुम होने लगी। स्वार्थ परता और असहानुभूति के बढ़जाने से गरीबी के दुख और भी बढ़गए। पाश्चात्यों के संसर्ग से हम आर्य जाति को मूल मंत्र 'वसुधैव कुटुम्कम्' और 'परोपकराय पुण्याय' को भूलते चले हैं।

आज कल के प्रति योगिता के जमाने में प्राचीन ग्राम रचना सर्वांश में हितप्रद नहीं होसकती। प्राचीन ग्राम व्यवस्था के निरुपयोगी भागों को छोड़कर उसमें देश. काल और परिस्थिति के अनुरूप सुधार कर उसका पुनरुज्जीवन करना

*The new map of Asia 1900-1919 by Herbert Adams lubbons.

प्रत्येक राजकर्ता का प्रथम कर्तव्य है। भारतीय राजा महाराजाओं से यह काम भले प्रकार पूर्ण होसकता है। क्योंकि वे स्वजातीय लोगों के आचार विचार, रूढी और आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझ सकते हैं। सर जॉर्ज कैम्बेल ने अपनी एक पुस्तक* में यह दिखाने की सफल चेष्टाकी है कि सन १८५७ के बलवे में पंजाव की ग्राम संस्थाओं ने सरकार की कितनी सहायता की थी। अस्तु।

अब हम यह दिखाने की चेष्टा करेंगे कि पंचायतों की पुनर्स्थापना करने से क्या लाभ होसकते हैं।

(क) ग्राम पंचायतों के स्थापित होजाने से पहला लाभ तो यह होगा कि न्याय सस्ता हो जायगा। और न्यायालयों का काम भी कम हो जायगा। आजकल की कोर्टों का इन्साफ वड़ा महँगा पड़ता है। सौ दो सौ रुपयों का झगड़ा पड़जाने पर हज़ारों रुपए फुकजाते हैं। और पांच सात गट्ठे कागजों के इकट्ठे होजाते हैं। कारकूनों से लगाकर ऊपर के ओफीसरों तक खूब गड़बड़ घोटाला होता है और फिर

*System of land Tenures in various countries

भी वरसों तक फैसला नहीं होता । कोर्ट फी, रजीस्ट्रेशन, वकील गवाह आदि की फीस के मारे नाकों नौ आजाते हैं। सरकारी कर्मचारी भी बेपरवाही से कार्य करते हैं जिससे बेचारे अर्जदार को भांति भांति के कष्ट सहना पड़ते हैं। मन लगाकर काम करने वाले अधिकारी बहुत ही कम पाए जाते हैं।

छोटे छोटे मुकद्दमों के लिए भी कोर्ट की शरण जाना पड़ता है जिससे स्मॉल कॉज कोर्टों और मुनासिफ कोर्टों का काम बहुत ही बढ़ जाता है मौंट स्टुअर्ड एलफिंस्टन्, सर टीमनरो, सर जे मालकम आदि की भी यही राय है। कोर्ट में जाने का विचार करते ही सबसे पहले पैसे का प्रश्न उपस्थित होता है। पास पैसे न होने से अधिकांश लोगों को चुपचाप अन्याय सह लेना पड़ता है। कारण बिना रुपए के कोर्ट में जाना एकदम असंभव है। कई विद्वान मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि भारत वर्ष जैसे कृषि प्रधान देश के लिए पंचायतों की व्यवस्था ही सर्व श्रेष्ठ है। एसा करने से प्रजा को तो न्याय सस्ता मिलेगा और सरकारी कर्मचारियों का काम भी बहुत घट

जायगा । पंजाब बम्बई आदि प्रदेशों में एवं बड़ोदा, देवास आदि देशी संस्थानों में ग्राम पंचायतों से लाभ ही हुआ है। कई ज़िलों के न्यायाधीशों ने लिखा है कि काफी सबूत न मिलने के कारण सेशन कोर्टों को कई मुकद्दमें खारिज़ करना पड़ते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि ये मुकद्दमे पंचायतों के सिपूर्द किए जाते, तो इन्साफ भी मिल जाता और कोर्टों का भी काम नहीं बढ़ता।

(ख) अकाल के समान दैवी आपदाओं के काल में भी लोगों के प्राण-रक्षण के लिए यह संस्थाएं बहुत काम आयंगी। आकाल के जमाने में कई लोग ऐसे भी पाए जाते हैं जो सरकारी 'रिलीफ वर्क' से सहायता नहीं लेते। फिर चाहे भूख के मारे उनके प्राण ही क्यों न चले जांय! कारण यह है कि अच्छे खानदान के लोग सरकारी रिलीफ वर्क से सहायता लेना अपमान कारक समझते हैं। अकाल निवारण सभा (फेमीन कमीशन) ने भी शिफारिस की है ये काम गांव पंचायतों के सुपुर्द कर दिए जाते तो अच्छा होता! अतएव पंचायतों के स्थापित होजाने से बिशेष लाभ होने की संभावना है।

(ग) शिक्षा, आरोग्य व्यवस्था, टीका लगाना, जन्म मृत्यु का लेखा रखना, आदि काम पंचायतों के सिपुर्द कर देने से पुष्कल लाभ होने की संभावना है। अनुभव से यह बातें भले प्रकार मालुम होगई है कि म्युनिसीपैलिटी शहर की पाठशालाओं की जैसी अच्छी व्यवस्था रख सकती है वैसी अच्छी व्यवस्था सरकारी अधिकारियों द्वारा नहीं रखी जासकती। कारण कि स्थानीय आवश्यकताएं और तकलीफें सरकार के ध्यान में नहीं आसकतीं। यह नियम खेड़ों को भी लागू होता है।

(घ) प्रत्येक गांव में नहर, तलाव, कुए आदि की दुरुस्ती का काम गांव के निवासी बिना खर्च ही कर सकते हैं। सरकार को इन कामों के लिए मजदूर लगाने पड़ते हैं। परन्तु किसान लोग बिना मजदूरी लिए ही काम करते हैं। मिश्र में यही व्यवस्था है। भारत वर्ष के पंजाब प्रान्त में भी इस पद्धति के शुरू करने से पुष्कल लाभ हुए हैं।

(ङ) उसी प्रकार कृषिसुधार में भी इन पंचायतों से पुष्कल सहायता मिल सकती है। भारतीय कृषक समुदाय

गरीब है । अतएव उपयोगी और मूल्यवान् हल आदि औज़ार खरीदना उनके लिए एक दम असंभव है । और यही कारण है कि मशीनों द्वारा कम खर्च और कम वक्त में ज्यादा अनाज पैदा करना उनके लिए संभव नहीं । परन्तु यदि पंचायतें इन मशीनों को खरीद लें तो सारा गांव उनसे लाभ उठा सकता है । फ्लैंडर्स देश में यहीं पद्धति प्रचलित है । और यहीं कारण है कि वहां के किसानों के गरीव होने पर भी तत्रस्थ कृषि की अवस्था उत्तम है ।

(च) सब से उत्तम लाभ यह होगा कि लोगों को सहकारिता से कार्य करने की बानसी पड़ जायगी । और उन्हें राजकार्य और सामाजिक शिक्षा भी मिलती रहेगी । खेड़ों में ग्राम पंचायतों के स्थापित होजाने पर सरकार स्थानिक स्वराज के तत्व सुलभ रीति से फैला सकेगी ।

ऊपर, ग्राम पंचायतों के स्थापन करने से होने वाले लाभों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया जा चुका हैं । हम यह नहीं कहते कि उक्त सब सुधार एक दम अमल में लाए जा सकेंगे । तथापि इतना तो निर्विवाद है कि इनका प्रारंभ करने

के लिए ग्राम मंडलों की स्थापित किया जाना परमावश्यक है। परन्तु यह काम बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। डच सरकार ने जावा द्वीप में 'कलचर सिस्टम' (Kulture system) नामक पद्धति प्रारम्भ की थी। भारत वर्ष में भी इसी का अनुकरण किया जाना चाहिए। सन १८७१ में अंगरेज सरकार ने सिलोन में गण अर्थात् ग्राम मंडलों की स्थापना की थी और चार ही वर्ष के अन्दर इस पद्धति के लाभ दृष्टि गोचर होने लगे।* ऐसे सुधार प्रारंभ करते समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इन से लोगों का मन न दुखे और ये सुधार चिरस्थायी और हितावह हों। तथापि यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जासकती कि इस हेतु की सिद्धि के लिए किस प्रकार की ग्राम व्यवस्था अमल

---

* स्थानाभाव के कारण हम इस सम्बन्ध में यहां अधिक नहीं लिख सकते। इस कानून के कुछ नियमों पर Village Autonomy by a Hindu Student of Politics नामक पुस्तक में विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ के लेखक हैं वीर राघवाचार्य। हमें इस ग्रंथ से विशेष सहायता मिली है। अतएव हम लेखक महोदय के विशेष कृतज्ञ हैं।

में लाई जानी चाहिए । सारे देश के लिए एकही प्रकार की पद्धति की अवलम्बन करना फायदेमंद न होगा। स्थलभेद और परिस्थिति के अनुसार उनमें फर्क रखना ही पड़ेगा। तथापि ग्राम मंडल की स्थापना का उद्दीष्ट हेतु एक ही होने से सामान्य सिद्धान्त सर्वत्र लागू किए जासकेंगे ।
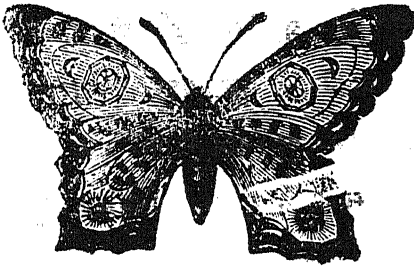
पांचवां परिच्छेद।

सैनिक सेवापद्धति।

यूरोप के अधिकांश भागों में छोटे २ जन-संघ ही भूमि के मालिक थे और खेती करने का काम भी इन्हीं के जिम्मे था। ये जन संघ एशिया के प्राचीन जनसंघों से मिलते जुलते थे। प्राचीन पद्धति के नाम शेष होने पर फ्रांस की राज्य क्रान्ति के पूर्व, पश्चमीय यूरोप में जमीन सम्बन्धी नवीन कायदा अस्तित्व में आ गया था। इस कायदे की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय पूवर्क नहीं कहा जा सकता *।

रोमन राज्य को नष्ट कर डालने पर विजयी जंगली जाति की टोलियों के नायकों ने अपने २ अनुयायियों को जागीरें दी थीं। ये जागीरें इस शर्त पर दी गई थीं कि वे युद्ध में उनका साथ दें। यही सैनिक सेवा पद्धति (फ्यूडल

* परिशिष्ट 'अ' देखिए।

सिस्टम) का मूल है । इन जागीरों के हक निश्चित करने के लिए नियम भी अवश्य ही बनाए गए होंगे किन्तु अभी तक इन नियमों का पता नहीं चला है । ये जागीरें प्रारम्भ में तो एक ही व्यक्ति को दी गई थीं, परन्तु बाद में वे वंश परम्परा के लिए करदी गई ।

इन जागीरों से फ्यूडालिज्म के पहले होने वाले परिवर्तनों में पुष्कल सहायता पहुंची । परन्तु यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन जागीरों का इतना बड़ा परिणाम कैसे हुआ ? उसी प्रकार यह बात भी समझ में नहीं आती कि इतने थोड़े समय में इंगलैंड और जरमनी के समान देशों में सैनिक सेवा पद्धति किस प्रकार उत्पन्न हो गई ? इन देशों की जमीन पर प्रजा का अधिकार था । इटली या गॉल देश के समान विदेशी राजाओं ने उस पर अधिकार नहीं कर लिया था । उसी प्रकार इन देशों में पड़ती जमीन ही जागीर में देने की प्रथा थी एवं वहां रोमन कायदों का प्रभाव भी बहुत ही कम था * ।

---

* पांचवीं शताब्दि में जंगली टयूटन लोगों ने रोमन साम्राज्य पर

प्राचीन काल में भिन्न २ स्वतन्त्र जन संघ ही इंगलैंड की भूमि के मालिक थे। ये जन संघ सुव्यवस्थित और स-

---

धिकार कर लिया। नायकों ने तथा उनके अनुयायियों ने उपजाऊ भूमि आपस में बांटली। इन्हें Benefices (जागीरें) नाम दिया गया। प्रारंभ में जागीरें देना या उन्हें कायम रखना राजा की इच्छा पर ही अवलम्बित था। परन्तु बाद में ये जागीरें वंश परम्परा के लिए करदी गई और तब उन्हें fiefs नाम दिया गया। राजा अपने कृपापात्रों को ही जागीरें देता था और इसके बदले में जागिरदारों को युद्ध में सेना द्वारा राजा की सेवा करनी पड़ती थी। धीरे २ ये जागीरदार स्वतंत्र बन बैठे। उन्हों ने अपनी जमीन किसानों को खेती करने के लिए दे दी। ये किसान जागीरदारों के गुलाम बन गए। इसके अलावा प्राचीन 'अलोडियल' नामक कृषक समूहों के पास भी बहुतसी जमीन थी। यह अभी तक 'फ्यूडलसिस्टम' में परिवर्तित न हो पाई थी। इन जागीरों के आस पास स्वतंत्र कृषकों की भूमि भी फैली हुई थी। ये प्रबल जागीर दार इन गरीब किसानों को भी बहुत तंग कीया करते थे। लाचार अत्याचारों से बचने के लिए उन बेचारों को इन दुष्ट जागीरदारों का आश्रय लेना पड़ा। इसे Commendation कहते हैं। जागीरदारों का आश्रय ग्रहण करने के लिए किसानों के प्राण और धन की रक्षा तो जरूर हुई परन्तु उन्हें परतंत्रता की मजबूत जंजीर में बंध जाना पड़ा। इस प्रकार एक ही दो सदियों में सैनिक सेवा पद्धति की जड़ जम गई।

वाङ्ग पूर्ण थे। एवं प्रत्येक जन संघ के अधिकार में मर्यादित प्रदेश था। परन्तु उन प्राचीन जन संघों के स्थान पर स्वामितन्त्र से काम करने वाले जन संघ निर्माण हो गए थे। इन जन संघों में दो प्रकार के भूमि वाहक शामिल थे। एक प्रकार के कृषक वर्ग को अलग जमीन देदी गई थी और दूसरे प्रकार के कृषक समुदाय को जमीन इस शर्त पर दी गई थी कि वे अपने स्वामि की सेवा करें। पहले प्रकार के भूमि वाहकों की जमीन को 'टेनामेटल' (जागीर) नाम दिया गया था एवं दूसरे प्रकार के भूमि वाहकों की जमीन 'डोमेन' कहाती थी। प्रत्येक संघ में दोनों प्रकार के भूमि वाहकों का होना जरूरी था। 'कोर्ट बैरन' सभा न्याय सभा थी। इस सभा में कुछ भूमि वाहकों के साथ जागीरदार को न्यायाधीश का काम करना पड़ता था। भूमि वाहकों की अनुपस्थिति में कोर्ट बैरन सभा की बैठक कायदे के विरुद्ध मानी जाती थी। डोमेन के कृषकों से कर वसूल करने के लिए बैठने वाली कोर्ट बैरन में भूमि वाहक सम्मिलित नहीं होते थे इस सभा को तब 'कोर्ट मानर' नाम दिया जाता था। डोमेन के अभाव में या उसके नष्ट हो जाने पर धीरे २ जा-

गीरदार स्वतन्त्र भूमि वाहकों के हकों की अवहेलना कर उन पर पूर्ण अधिकार स्थापित कर लेता था।

इंगलैंड की सार्वजनिक जमीन का अधिकांश भाग राजा या प्रजा ने व्यक्ति या संस्था को इनाम में दे दिया था। ये लोग उस पर कृषि करते थे। ये मानर संघ ग्राम मंडल से ही पैदा हुए थे। फर्क इतना ही था कि पहले सारे पश्चिमी यूरोप में सार्वजनिक जमीन पर गांव का ही अधिकार था। किन्तु बाद में एक ही व्यक्ति ने सब की जमीन पर अधिकार कर लिया था। प्राचीन भूमि वाहकों के समान इन्हें चरणोई आदि के हक प्राप्त नहीं थे। पड़ती जमीन पर मालिक का ही अधिकार था। वही किसानों को खेती करने के लिए जमीन (चरणोई छोड़ कर) देता था। अर्थात् प्राचीन हक नष्ट हो गए थे और जागीरदार ही जमीन के मालिक बन बैठे थे। एवं जन संघ के सब अधिकार उनके हाथ में चले गए थे।

चरणोई आदि जमीन पर मालिक का अधिकार कम ज्यादा परिमाण में सर्वत्र पाया जाता है। भिन्न भिन्न मानर

में इस सम्बधी रूढी भी भिन्न भिन्न थी । कभी कभी मालिक कम्पाउण्ड खींच कर कुछ जमीन 'कैंडलमास डे'+ से लामासडे तक अपने अधिकार में रखता था। और वर्ष के शेष दिन गांव के बड़े बड़े कुटुम्ब या अन्य लोग उसका उपयोग करते थे । पुराने भूमिग्राहकों का इस चरणोई पर हक्क रहता था । कभी कभी मालिक कम्पाउण्ड खींचने तथा उसके तोड़ने की तिथी भी नियत कर दिया करता था ।

ग्राम मंडल के कुटुम्ब नायक ही अकसर स्वतंत्र भूमिग्राहक होते थे । जमीन के तीन लम्बे पट्टे किए जाते थे । और तब प्रत्येक पट्टे में का एक एक खेत प्रत्येक किसान को

+ जिस प्रकार हिन्दू मन्दिरों में 'नंदादीप' जलाने की प्रथा है उसी प्रकार रोमन कैथोलिक पंथ के लोग तिवहार के दिन देवता और साधुओं की प्रतिमा के आगे मोमबत्ती जलाते हैं। फरवरी की दूसरी तारीख को कैंडलमास का दिन माना जाता है। इस दिन वर्षभर पुरने इतनी मोमबत्तियां अभिमंत्रित कर रख दी जाती हैं । प्राचीनकाल में रोमन लोग 'फेब्रुआना' देवी के आगे मोमबत्ती जलाते थे संभवतः ईसाइयों ने इसी का अनुकरण किया होगा ।

बांट दिया जाता था। परन्तु कहीं कहीं खेती करने की पद्धति इतनी बेढंगी है कि हम उसे अति प्राचीन कहे बिना नहीं रह सकते। इनकी कृषि पद्धति टयूटन लोगों की कृषि पद्धति से साम्य खाती है। परन्तु कहीं कहीं बड़े बड़े प्रदेश मानर की ओर से ठेके पर देदिए जाते थे। ये ठेकेदार जोतने बोने के लिए किसानों को जमीन दे दिया करते थे। इस भूमिपर भूमिवाहक का अधिकार नहीं रहता था सर. एच. एलिस. ने इस प्रकार की मिश्र भूमि देख कर अपनी पुस्तक 'ड्यूम्सडे बुक*' में भिन्न भिन्न लोगों की स्थिति का खाका खींचा है। इस पुस्तक को पढ़ने से यह कल्पना दृढ़ हो जाती है कि

* विलियम विजयी ने सन् १०६६ में इंगलैंड में नारमन वंश के शासन की नींव डाली। उसने अपने सरदारों को जागीरें दीथीं। जमीन के हकों सम्बन्धी झगड़ों को निपटाने के लिय सन् १०८६ में सारे देश के प्रत्येक खेत, उसके मालिक और उनके हकों की यादी बनाई गई थी इसे ही 'ड्यूम्सडे' नाम दिया गया था। पूर्वकाल में जमीन संबन्धी झगड़े इसी पुस्तक द्वारा निपटाए जाते थे। यह किताब एक्सचेकर के पास रहा करती थी। इसे एक मजबूत लोहे की पेटी में रखते थे। आज कल यह किताब इंगलैंड के रिकार्ड आफिस में रखी है। इस पुस्तक के पढ़ने से तत्कालीन अंगरेज लोगों की स्थिति का पता लग जाता है।

सैनिक सेवा पद्धति का पूर्ण विकाश होने को बहुत समय लगा। और इस अवधि में प्राचीन काल के स्वतंत्र ग्राम बासी आश्रित बनगए। कारण कि इंगलैंड के सरदारों ने ट्यूटन ग्राम व्यवस्था का अनुकरण करते हुए ही अपनी भूमि पर आश्रितों को बसाया था। मानर के जनसंघ को मानोरियलकोर्ट का बंधन था। इस कोर्ट में स्वयं सरदार या उसका प्रतिनिधि बैठा करता था। 'मानोरियल' शीर्षक में भिन्न भिन्न प्रकार की तीन कोर्टों का समावेश होता है। इन कोर्टों का नाम था—कोर्ट लीट, कोर्ट बैरन और मानर की ×कस्टमरी कोर्ट।

× फ्रांस में भी नारमन राजाओं ने अपने सरदारों को जागीरें दी थीं। इन जागीरों को 'मानार' कहते थे। और उनके मालिकों को बैरन संज्ञा दी गई थी। मानार के भूमिवाहकों को 'फ्रीहोलडर्स' या 'कापीहोलडर्स' नाम दिया गया था। प्रत्येक मानर के भूमिवाहकों की संख्या अधिक होती थी। किन्तु उनका मालिक एक ही होता था। मानर की जमीन तीन भागों में विभक्त रहती थी १ बैरन का प्रासाद और उसके आस पास की भूमि २ स्वतंत्र भूमिवाहक या खातेदारों को दी हुई भूमि और ३ सर्वसाधारण जमीन। सारांश में प्रत्येक मानार को छोटा सा राज्य कह सकते हैं। कर वसूल करने टंट बखेड़ तोड़ने और व्यवस्था रखने के लिए मानोरियल नामक न्याय मन्दिर रहते थे। इनमें

इनकी उत्पत्ति टयूटन लोगों की ग्रामसभा से ही हुई है। ग्रामसभा के दीवानी और फौज़दारी अधिकार भी इन कोर्टों को प्राप्त होगये थे। अपने अधीनस्थ प्रदेशों की व्यवस्था रखना एवं अल्पांश में नवीन कायदे बनाने का अधिकार भी इनके हाथ में चला गया था। उस जमाने में विधायक और प्रवर्त्तक अधिकारों में स्पष्ट भेद नहीं था अतएव स्वतंत्र जिमींदारों के हाथ में बहुत से अधिकार चले गए थे। लीट कोर्ट के ज्यूरी का काम, कोर्ट बैरन में बैठने का अधिकार

सरदार, उसका प्रतिनिधि या राजा का प्रतिनिधि ही अध्यक्ष होता था। और मानर के सब स्वतंत्र कृषक सभासद होते थे। कोर्ट बैरन और कस्टमरी कोर्ट का काम कर वसूल करना, हिसाब रखना और भूमिवाहकों के सरदारों से या पारस्पारिक दीवानी मुकद्दमों का फैसला करना ही था भेद इतना ही था कि कोर्ट बैरन स्वतंत्र भूमिवाहकों की फर्याद सुनती थी और कस्टमरी कोर्ट खातेदारों का (Copy-holders) न्याय करती थी। जिस मानर में स्वतंत्र भूमिवाहक न रहते थे वहां कोर्ट बैरन भी नहीं बैठती थी। कोर्टलीट फौजदारी अदालत थी। इस कोर्ट का मुख्य काम मानार के भूमिवाहकों से 'फ्रैंकप्लेज' (प्रतिज्ञा) करना था। आलफ्रेड दी ग्रेट के जमाने में 'फ्रेप्कलेज' लेने की प्रथा थी। आज कल यह प्रथा नाम शेष होगई है।

या ऐसे ही अन्य कुछ हक प्रजा को प्राप्त थे। कायदे पंडितों का मत है कि कोर्ट लीट का अस्तित्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में राजानुशासन पर अवलम्बित रहता था। और इस पर से उन्होंने यह भी निश्चित कर लिया था कि जागीरदार कोर्ट बैरन में बैठ सकते थे किन्तु उन्हें कोर्ट लीट में बैठने का अधिकार न था। कायदा जानने वाला उनका एक अधिव्यक्ति ही कोर्ट लीट में बैठ सकता था। सब स्वतंत्र मनुष्यों के 'इकरारनामें' की जांच करने का काम ही कोर्ट के सिपूर्द था। अन्य मानोरियल कोर्टों की अपेक्षा इस कोर्ट का महत्व अधिक था। ह्रासकाल में भी यही माना जाता था कि मीनोरियल कोर्ट कृषक जन समुदाय की नियामत हैं। मार्शल* ने लिखा है कि सैनिक सेवापद्धति के नाम शेष होजाने से इन कोर्टों का अस्तित्व भी न रहा है। तथापि कहीं कहीं अबभी लोगों ने अपनी खुशी से इन कोर्टों को बनाए रखा है। और इसका एक मात्र कारण लोगों में ऐक्य का बना रहना है। वे यह बात अच्छी तरह जानते

---

* Rural Economy of yorkshire. नामक ग्रंथ का प्रथम भाग सफा २७.

हैं कि छोटे बड़े रास्तों की दुरुस्ती करना, नदी तालाव आदि स्वच्छ रखना, सफाई आदि कामों के लिए ऊपर लिखी हुई कोर्टों के समान एक आध कोर्ट का होना ज़रूरी है।

सारांश में, प्राचीन ग्राम मंडल और अर्वाचीन मनोरियल जन संघों की तुलना करने से नीचे लिखे हुए अनुमान निकलते हैं।

जहां जहां प्राचीन काल में पाया जाने वाला संयुक्त स्वामित्व नष्ट हो गया है या हो रहा है। व्यक्ति स्वामित्व का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, वहां सैनिक सेवा पद्धति के प्रवेश होने से लोगों के हकों को धक्का नहीं पहुंचा है। इस अवधि में कुछ लोक समुदाय दास्यस्थिति में प्राप्त हो गए थे। और कुछ छोटे २ भूमि वाहक, धीरे २ ठेकेदारों की योग्यता को प्राप्त हो गए थे। जहां जहां लोक समुदायों के हक संदिग्ध थे वहां वहां जिमीन्दार अपने पैर फैलाने लगे थे। खेती की जाने वाली जमीन की अपेक्षा चरणोई पर और चरणोई की अपेक्षा जंगल पर वे अपना अधिकार ज्यादा जमा सके थे। इस पर से यह सिद्ध होता है कि जन संघों

की विघायक शक्ति नष्ट हो जाने से जिमींदारों ने कई हक अपने हाथ में ले लिए थे। सैनिक सेवा पद्धति से पैदा हुए कायदों की रोमन कायदों से तुलना करने से कृषकों की बाह्यस्थिति के परिवर्तन के उक्त वर्णन को पुष्टि मिलती है। रोमन कायदों में सार्वजनिक वस्तुएं एक निराले वर्ग में रखी गई थीं। इस वर्ग में धर्म सम्बन्धी (Res nullius) राष्ट्रीय (Publiciusus) और संयुक्त (Res universorum) आदि वर्ग की जायदाद शामिल थीं। इन वस्तुओं को सारा समाज या जो सब से पहले उन पर अधिकार कर लेता था वही उपभोग करता था *। किन्तु फ्यूडल सिस्टम के

* जस्टीनियन के रोमन कायदे में Communes नामक सार्वजनिक वस्तुओं का एक और वर्ग दिया है। इस वर्ग में हवा समुद्र आदि भी शामिल हैं। मन्दिर और स्मशान पहले वर्ग में, नदी, तालाब, बंदर आदि दूसरे वर्ग में और चरखोई आदि संयुक्त स्वामित्व की जायदाद तीसरे वर्ग में शामिल हैं। इन तीनों प्रकार की वस्तुओं का सम्पादन (occupatis) वृद्धि (accessio) और दान (traditio) में से किसी एक साधन द्वारा एक आध व्यक्ति के अधिकार में जाना परमावश्यक है। फ्यूडल सिस्टम के स्थापित हो जाने पर ये अधिकार जिमींदार या राजा के हाथ में चले गए थे।

कायदे के अनुसार इन सब वस्तुओं पर मानर के मालिक या राजाका ही अधिकार रहता था। इस प्रकार सार्वजनिक संपत्ति मानी जाने वाली लड़ाई की लूट सब से पहले राजा को ही मिलती थी।

अति प्राचीन काल में भिन्न २ मार्गों से अनेकों परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों पर विचार करने वाले व्यक्तियों को अधिकतर तर्क पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। तथापि सैनिक सेवा पद्धति के प्रारम्भ में कालिक लोगों की स्थिति सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रमाण जरमनी में बहुत पाए जाते हैं। इस का कारण यह है कि इंगलैंड में एक छत्री शासन स्थापित हो जाने से वहां की प्राचीन रूढ़ियां नष्ट हो गई हैं किन्तु जरमनी में यह बात नहीं पाई जाती और इसीलिए वहां प्राचीन रूढ़ियां अभी तक बनी हुई हैं।

व्हैन मोरर प्रभृति विद्वानों का एक मात्र मुख्य प्रश्न यह है कि प्राचीन मार्क से अर्वाचीन मानर की उत्पत्ति कैसे हुई? इन ग्रन्थकारों के मत से इसका एक मात्र कारण छोटे छोटे लोक समूहों के पारस्परिक टंटे और युद्ध ही हैं। एक

लोक समूह दूसरे लोक समूह को जीत लेता और तब वह दूसरे लोक समूह की भूमि पर अधिकार कर लेता था। इस जमीन में से कुछ भाग तो विजयी लोग अपने निज के लिए रख लेते हैं और शेष विजित लोक समूह को लौटाल देते थे। कभी २ सब जमीन विजित लोक समूह को लौटाल दी जाती थी किन्तु उन्हें विजेता के अंकित हो रहना पड़ता था। रोमन इतिहास में इस प्रकार के स्थित्यन्तर के उदाहरण भरे पड़े हैं। और इसी से वहाँ के जमीन सम्बन्धी कायदों में अत्यधिक परिवर्तन हो गए थे विजयी लोक समूह विजित लोक समूह की जमीन बांट लेता था परन्तु यह जमीन बराबर २ नहीं बांटी जाती थी। जो ज्यादा बहादुरी दिखाता था उसे ज्यादा जमीन दी जाती थी और जो कम बहादुरी दिखाता था उसे कम। और यही कारण है कि टयूटन ग्राम मंडलों के हरएक व्यक्ति की जायदाद में समानता न रही थी। जीती हुई जमीन लौटाल देने पर भी विजयी लोगों का विजित लोगों पर वर्चस्व रहता था और यह वर्चस्व एक प्रकार का स्वामित्व ही था। कभी २ अन्य कारणों से भी स्वामित्व प्राप्त हो जाता था। एक आध ग्राम संस्था के तावे

की जमीन के विस्तीर्ण और उपजाऊ होने पर उस प्रदेश के भिन्न २ भागों में छोटे २ कुटुम्ब समुदाय बसाए जाते थे। इन नवीन बसे हुए कुटुम्बों को खेती के लिए जमीन दी जाती थी। परन्तु क्या पुराने और क्या नए, सब गांवों के लिए एक ही जंगल रखा जाता था। इन ग्राम समुदायों पर उसी गांव की ग्राम संस्था का अधिकार रहता था, जिस गांव से कि वे कुटुम्ब आकर वहां बसे थे। वही इन नवीन बसे हुए खेड़ों की स्वामिनी मानी जाती थी।

टयूटन लोगों के मंडल की व्यवस्था लोकतंत्र से ही चलती थी तथापि किसी एक या अधिक कुटुम्ब के मनुष्य पवित्र और शेष कुटुम्बों के मनुष्यों को अपवित्र मानने की प्रथा सर्वत्र प्रचालित थी। पवित्र कुटुम्बों में से ही एक आद्य व्यक्ति युद्ध के से समय नायक चुना जाता था। परन्तु उस जमाने में भिन्न २ अधिकारों में के स्पष्ट भेद लोगों को मालूम न थे और यही कारण है कि नायक को अनियंत्रित अधिकार मिल जाते ही—उसे राजकीय, फौजी, आदि सब अधिकार भी प्राप्त हो जाते थे। आनीबानी के प्रसंग पर तो नायक

लोगों द्वारा ही चुना जाता था किन्तु दूसरे मौकों पर गांव के श्रेष्ठमाने जाने वाले गोत्रज को ही नायकत्व प्राप्त रहता था । प्रारंभ में जो अधिकार फौजी कामों के लिए दिया जाता था । उसे ही शान्ति के जमाने में राजकीय और व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त हो गया था । जीती हुई जमीन का सब से बड़ा भाग नायक को दिया जाता था । और अपने निज के मंडल की जमीन में से भी इनाम की तौर पर उसे कुछ जमीन दी जाती थी । किसी कारण से नित्य के व्यवहार में थोड़ासा फर्क पड़ते ही नायक को सब अधिकार अपने हाथ में ले लेने का मौका मिल जाता था । इस प्रकार प्राप्त किए हुए अधिकारों में एक अधिकार बहुत ही महत्व का था परन्तु बहुत दिनों तक उसका महत्व लोगों के ध्यान में नहीं आया । नायक को अपनी जमीन के चारों ओर कंपाउण्ड खींचने का अधिकार मिल गया था और इससे गांव की जमीन की एक सी खेती करने की रूढ़ी कमजोर हो गई । सारांश में जरमन और स्केंडिनेवियन जाति के किसानों के हिस्सों में अनेक कारणों से वैषम्य उत्पन्न हो गया था । इसी प्रकार एक गांव

के दूसरे गांव पर अधिकार जमा लेने, स्थावर जायदाद की कमी बेशी और उक्त वर्चस्व प्राप्त हो जाने से एक विवाहित कुटुम्ब और तद्द्वारा उस कुटुम्ब के मुखिया कोही सब लाभ मिलता रहता था। इस अवस्था पर पहुंचते ही सैनिक सेवा पद्धति के सब अंग नजर आने लगते हैं। परन्तु उस की पूर्ण बाढ़ होने के दो कारण थे। इन में से एक कारण का दिग्दर्शन करा ही चुके हैं। उस का व्यापार प्रारंभ से ही चल रहा था। ट्यूटन लोगों के बड़े २ राज्य स्थापित करने पर ही दूसरे कारण का अस्तित्व हुआ। यह कारण है अपने राष्ट्र के जंगल या जीती हुई बंजड़ जमीन इनाम देना। जिन लोगों को जमीन इनाम दी गई थी उनमें से बहुत से पहले से ही, स्वाभाविक कारणों से प्रबल हो गए थे। तथापि इनामदार नामक इस नवीन वर्ग का सामर्थ्य निराला ही था। यही किसानों को जोतने के लिए जमीन देता था। जहां रोमन प्रजा ज्यादा थी वहां सैनिक सेवा पद्धति की जड़ जमगई थी। जो भी समाज व्यवस्था ट्यूटन लोगों से ही ली गई थी तोभी रोमन लोग उसके घटकावयव अपनी इच्छानुसार झुका सकते थे और दूसरे रोमन लोगों

के सम्पर्क के कारण टयूटन समाज के अनिश्चित नातेरिश्ते निश्चित हो गए थे। और इसी से टयूटन जन समाज में शीघ्रता-पूर्वक परिवर्तन होने लगा।

अब हम भारत की परिस्थिति के अनुसार इस प्रश्न पर विचार करेंगे। जो समाज-व्यवस्था यूरोप में नाम शेष हो गई हैं, वह अब भी भारत में पाई जाती है। भारतवर्ष के किसी प्रान्त पर अधिकार कर लेने के बाद भारत सरकार सब से पहले सर्वे करती है और तब जमीन का महसूल ठहराती है। परन्तु यह प्रश्न उठ खड़ा होता था कि करकी रकम सरकारी खजाने में पहुंचाने की जिम्मेदारी किस व्यक्ति मंडल या समाज को सौंपी जाय? अर्थात् यह निश्चय करना चाहिए कि कृषि सम्बंधी स्वतंत्र अधिकार किस व्यक्ति को प्राप्त हैं। यह निश्चय हो जाने पर तदनुसार उस प्रान्त की सामाजिक और राजकीय व्यवस्था स्थिर की जाती थी। जिन लोगों को कर की रकम सरकारी खजाने में पहुंचाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी उन्हें कर बसूल करने का अधिकार भी दिया गया था। परन्तु उन्हें किसी प्रकार के विशेष

अधिकार न दिये गए थे, वरन उनके पहले के अधिकार ही विशेष स्पष्ट कर दिए गए थे। सारांश में सरकारी कर वसूल करने का हक मिलजाने से धीरे २ अन्य लोगों के हक घटते चले थे, भारत सरकार ने भिन्न २ प्रान्तों में पटेल, लम्बरदार आदि नियत किए हैं। इन शब्दों का अर्थ सब जगह एकसा नहीं होता, तो भी यह नियम सब जगह लागू होता है कि उक्त नामों द्वारा निर्दिष्ट किए हुए अधिकारों के बढ़ते ही अन्य लोगों के हक कम हो जाते हैं कल्पना कीजिए कि किसी प्रान्त के कुछ धनियों ने कृषकों के हक छीन लिए हैं अब नये सिरे से कर का ठहराव करते समय यदि सरकार इन धनी लोगों द्वारा कर वसूल न कर सीधे प्रजा से ही कर वसूल करने का नियम बनावे तो उन की दशा गिरती जायगी और शीघ्र ही वे साधारण कृषक की श्रेणी में आजायंगे। यदि सरकार इन धनी लोगों द्वारा ही कर वसूल करे, तो उनकी सत्ता और सम्पति बहुत ही बढ़ जायगी। यदि तीसरा ही मार्ग स्वीकार किया जाय तो इन ग्राम-मंडलों का स्वाभाविकतया होने वाला रूपान्तर एक दम बंद हो जायगा।

टयूटन लोगों के राजा और भारतवर्ष के अंगरेज सरकार की समानता नहीं। अंग्रेज सरकार जिमींदारों को नौकर समझती है। वह अपनी इच्छानुसार उन्हें रख सकती और निकाल सकती है। जिमींदार धन और शरीर से भारत सरकार की सेवा करते हैं। परन्तु अनुभव से मालूम हुआ है कि जब सरकार द्वारा नियुक्त एक आध राज कर्मचारी हिन्दू समाज के समान अस्थिर लोक समाज पर हुकूमत चलाने लगता है तो अन्य सब वर्ग निष्प्रभ हो जाते हैं और उस कर्मचारी के वर्ग के लोगों का प्रभाव बढ़ जाता है इस विवेचन पर से यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि जागीरें देने की पद्धति से जमीन सम्बंधी हकों में किस प्रकार फेर बदल होता है। उसी प्रकार टयूटन राजा की सेवा कर जागीरें प्राप्त कर लेने से सरदारों की सत्ता कितनी बढ़ गई होगी इस बात का अनुमान भी किया जा सकता है।

मुसलमान राजाओं का विश्वास था कि राजा कर वसूल करने के लिए किसी व्यक्ति को नियत कर सकता है। अंगरेजों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। परन्तु शीघ्र ही

उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई। वे गांव की जमीन में थोड़ा बहुत हक रखने वाले व्यक्ति के जिम्मे ही वसूली का काम देना योग्य समझने लगे। तथापि भूमिस्वामित्व किसे कहते हैं और उन में किन २ अधिकारों का समावेश होता है, इस का निश्चय किया जाना आवश्यक है। किन्तु इस प्रश्न का हल करना उतना सहल नहीं। भूमिस्वामित्व के सम्बंध में राज कर्मचारियों में बहुत मत भेद हैं। कुछ अपवादों को छोड़ कर हम उन्हें दो वर्गों में विभक्त करते हैं। एक पक्ष के लोगों का कहना है कि सब जमीन व्यक्तिशः या समुदाय रूप से कृषकों की है। दूसरे वर्ग का कहना है कि भूमिस्वामित्व उच्च वर्ग को ही प्राप्त होना चाहिए और यदि भारत में अंगरेज सरकार का राज्य न होता, तो ऐसा ही होता भी। इस वर्ग में भी दो पक्ष और हो गये हैं। प्रथम पक्ष का कहना है कि जमीन पर सर्व श्रेष्ठ हक रखने वालों को ही वे सब अधिकार प्राप्त हैं, जो आज कल इंगलैंड में जमीन के मालिकों को प्राप्त हैं। दूसरे पक्ष का मत है कि यदि भारत वासियों की रूढ़ियों से इन अधिकारों का मिलान करें तो जमीन आसमान का फर्क नजर आता

है । परन्तु इन दोनों पक्षों के मत में थोड़ा बहुत सत्यांश अवश्य है ।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने बंगाल में जिमीदारी पद्धति चलाई थी । उन्होंने मुगल बादशाहों तथा मुसलमान नवाबों के माल गुजारी वसूल करने वाले कर्मचारियों को ही जिमींदार बना दिये । परन्तु शीघ्र ही यह पद्धति अयोग्य मालुम होने लगी । इसका परिणाम भी बुरा ही हुआ । अतएव बाद में जिन बड़े २ प्रान्तों पर अधिकार कर लिया गया था, अंग्रेज अधिकारियों को स्वप्न में भी यह विश्वास न होता था कि उन प्रान्तों में बड़े २ जिमीदार होंगे । बड़े २ राज कर्मचारियों के लेखों में यह ध्वनित किया गया है कि भारत में ग्राम मंडल ही भूमि का मालिक है और ग्राम संस्था के भूमि स्वामित्व पर सरकार का ही अधिकार है ।

जरमन और अंगरेज ग्रंथकारों ने अति प्राचीन ग्राम मंडलों से मॅनर की व्यवस्था तक जिन २ रूपान्तरों का वर्णन किया है, वे सब रूपान्तर भारतवर्ष में भी पाये जाते हैं । केवल अतिप्राचीन और अर्वाचीन रूपान्तर ही नहीं

देख पड़ते। किसी ग्राम मंडल में कुटुम्ब नायक की अविकृत सत्ता का उदाहरण नहीं पाया जाता। परन्तु जो भी सर्वसत्ता एक आध व्यक्ति के हाथ में चली गई हो तो भी उसके आचरण की आलोचना करने एवं सार्वजनिक मतको विशेष मान देने की आदत सर्वत्र पाई जाती है और यह प्राचीन व्यवस्था का अवशेष है। जहां ग्रामाध्यक्ष या पटेल लोगों द्वारा निर्वाचित किया जाता है वहां यह निर्वाचन वंश परम्परागत सम्बंध के अनुसार ही किया जाता है। तो भी कई गांव ऐसे भी मिलेंगे जहां सब सत्ता पंचायत सभा ही के हाथ में है और यह सभा अपने को कृषक वर्ग का स्वामि मानती है। इसके प्रतिकूल कई गांव ऐसे भी मिलेंगे कि जहां सब सत्ता एक एक व्यक्ति या कुछ कुटुम्ब नायकों के हाथ में है। किसी किसी गांव में तो यह नियम है कि अमुक कुटुम्ब के व्यक्ति को ही पटेल निर्वाचन करना चाहिए कहीं २ उक्त नियम तो जरूर पाया जाता है परन्तु उस व्यक्ति के अयोग्य या पंगु होने पर एक या अधिक कुटुम्बों में से ही एक आध व्यक्ति पटेल चुना जाता है। झगड़े तोड़ना, बाद उपस्थित होने पर लोक रूढ़ी जतलाना और

गांव की व्यवस्था रखने का काम ही पटेल के जिम्मे रहता है।

भारतवर्ष में जमीन सम्बंधी असंख्य प्रकार के हक पाए जाते हैं। अंगरेजों का मत है कि इंगलैंड और भारतवर्ष में जमीन के हक एक से हैं। परन्तु यह उन का भ्रम मात्र है। दोनों देशों की परिस्थिति में इतना अधिक सादृश्य होना एक दम असंभव है। यूरोप खंड की सैनिक सेवा पद्धति के जोड़ की एक प्रकार की पद्धति भारतवर्ष में भी वर्तमान थी। इंगलैंड और यूरोप के व्यक्ति स्वातंत्र्य का पूर्ण विकास होने के पहले उसके जितने रूपान्तर हुए थे वे सब भारतवर्ष में भी पाए जाते हैं। किन्तु वे एक दम दृष्टि गोचर नहीं होते, कारण कि वे एक के बाद एक उत्पन्न नहीं हुए थे। भारत वर्ष में फ्यूडल सिस्टम (सैनिक सेवा पद्धति) की स्थापना हो गई थी। किन्तु उसकी पूर्ण बाढ़ होने के चिन्ह दिखाई नहीं देते। अतएव कहा जा सकता है कि उस का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। यदि क्षण भर के लिए मान भी लें कि भारतवर्ष में चारों ओर सैनिक सेवा पद्धति का

पूर्ण विकास हो गया था, तो भी यह नहीं मान सकते कि यहां का भूस्वामित्वाधिकार इंगलैंड के जिमीदारों के हकों के समान अनिश्चित था। नारमन राज्य की नींव पड़ने के बादकी पांच छह सदियों में इंगलैंड में घोर परिवर्तन हुए। एवं कानून बनाने और न्याय करने का सब अधिकार एक ही व्यक्ति के हाथ में चला गया। परन्तु भारतवर्ष की स्थिति इस से बिलकुल भिन्न थी। अंगरेजी शासन की नींव पड़ने के पहले सारे भारतवर्ष पर छोटे बड़े अनेक राजा राज्य करते थे। ये राजा लूटपाट करते रहते थे। भारतीय ग्राम संस्थाओं की सर्वत्र एकसी बाढ़ न होने का यह भी एक जबरदस्त कारण है। प्रारंभ में जातियां एक दूसरी से युद्ध करती थीं। परन्तु बाद में वैतानिक सैनिकों ने उनका स्थान ग्रहण लिया। तथापि इन राजाओं ने नवीन कानून बनाने की बिलकुल कोशिश न की और न उम्होंने सर्व सत्ता अपने हाथ में कर लेने का ही प्रयत्न किया। और यही कारण है कि इनके कृत्यों का ग्राम संस्था के अन्तस्थ व्यापार पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

कई लेखकों ने यह प्रति पादित करने के लिए आकाश

पाताल एक किया है कि सैनिक सेवा पद्धति के कारण लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है एवं इसके कारण असंख्य लोगों को भयंकर अत्याचार सहने पड़े हैं । किन्तु यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो उनका यह कथन करीब करीब बेबुनियादि है सैनिक सेवा पद्धति से कई प्रकार के लाभ हुए हैं जिन में कुछ आर्थिक और व्यावहारिक लाभ ही मुख्य हैं । इस पद्धति से होने वाले लाभों को देख कर ही लोगों ने अपनी प्राचीन अलोडियल पद्धति छोड़कर 'सोकेज' * पद्धति ग्रहण करली थी किसी सरदार का आश्रय ग्रहण कर लेने पर निश्चित 'चाकरी' के सिवा अन्य प्रकार का कर बिलकुल नहीं देना पड़ता था । इस 'चाकरी' की पद्धति की निश्चितता, नियमितता और शाश्वति को देख कर ही लोगों ने इसे ग्रहण कर लिया था । दूसरी पद्धति के प्रारंभ होने से फायदा इतना ही हुआ कि मुख्य सरदारों को जंगलों का अधिकार भी मिल गया उसी प्रकार जनसंघ द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से खेती करने के अनिवार्य्य नियम से भी उन्हें छुट-

---

* परिशिष्ट ब- देखिए ।

कारा मिल गया। इंगलैंड देश एक द्वीप है। उसकी बढ़ती हुई जन संख्या के पोषणार्थ काफी अनाज पैदा करने के लिए वहां की सब पड़ती जमीन पर खेती करना बहुत ही जरूरी था। एवं नियमित भूमि में अधिकाधिक अनाज पैदा करने के लिए कृषि की सर्वोत्तम पद्धति का अनुकरण करना एक प्रकार से अनिवार्य्य हो गया था। और इसकी पूर्ति के लिए ग्राम संस्था की व्यवस्था एक दम निरुपयोगी थी। ग्राम मंडल की व्यवस्था के पुरस्कर्ता महाशयों का कहना है कि इस व्यवस्था से गांव के सब कुटुम्बों को सुख और शान्ति प्राप्त होती। और इन ग्राम मंडलों द्वारा प्रारंभ किए हुए उद्योग धंधे और कला कौशल अवर्णनीय होते। तथापि वे भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि प्राचीन पद्धति के ग्राम मंडल नवीन वीज बोने और वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने की रीति कदापि अंगीकार नहीं करते। इतना ही नहीं, वे अपने ताबे के जंगलों का योग उपयोगी भी नहीं करते। अनुभव से मालुम हुआ है कि इसी पद्धति को स्वीकार कर लेने के कारण वैज्ञानिक पद्धति से बड़े माप पर खेती करने का काम अधिक सरल हो गया है। लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल प्रान्त में जिमीदारी पद्धति की स्था-

पना की थी। उस समय लोगों ने आप के इस कार्य की खूब निन्दा की। आज कल भी कुछ लोग उन्हें इस पद्धति की स्थापना करने के लिए दोष देते हैं किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। इसी जिमीदारी पद्धति के कारण बंगाल प्रान्त का एक बड़ा भूभाग आबाद हो गया। बहुत सी पड़ती जमीन पर खेती की जाने लगी। यदि सारे भारतवर्ष में बंगाल के समान स्थायी बन्दोवस्त कर दिया जाता तो भारतवर्ष की साम्पात्तिक अवस्था बहुत अच्छी हो जाती।

ऊपर लिखा जा चुका है कि आज कल इँगलैंड के जिमीदारों को अपनी जिमींदारी पर (Estate) अबाधित अधिकार है। इसका मूल कारण है इँगलैंड के सरदारों का प्राचीन काल में अपनी जागीर पर अनियंत्रित अधिकार। अपनी जिमीदारी पर नए गाँव बसाने या अपने महल के इर्द गिर्द की जमीन पर अपनी निज की देख रेख में नौकरों द्वारा खेती कराने का उन्हें पूर्ण अधिकार था। वे पूर्ण स्वतत्र थे। साधारण किसानों के समान वे किसी प्रकार बंधनों से बँधे न थे! इँगलैंड के बहुत से लोग अमेरिका में जा बसे थे। अमेरिका के

न्यू इँगलैंड प्रान्त में बसे हुए लोगों ने प्रारम्भ में इस पद्धति का बहिष्कार किया। किन्तु उन्हें शीघ्र ही अपनी गलती मालूम हो गई और तब उन्हों ने चट उसे स्वीकार कर लिया। और इस पद्धति का स्वीकार करने के कारण ही आज अमेरिका वैज्ञानिक साधनों द्वारा कृषि में गजब की उन्नति कर सका है।

पश्चिमी यूरोप के ग्राम मंडलों का कारोबार लोक सत्तात्मक ही था। तथापि उनकी रचना वस्तुतः प्राच्य देशों के ग्राम मंडलों के समान अल्प जन सत्तात्मक ही थी। उस ज़माने में ज़मीन तो बहुत ही ज़्यादा थी और जन संख्या कम थी। अतएव सारे जनसंघ के लिए काफ़ी अन्न पैदा करने के लिए यह बहुत ज़रूरी था कि बाहर के लोग भी जनसंघों में शामिल कर लिए जायं। और दूसरे लोग जन-संघों में शामिल किए भी जाते थे। परन्तु धीरे २ यह प्रथा बंद होगई।

सैनिक सेवा पद्धति की स्थापना के समय समाज के कई वर्ग दास्यस्थिति में प्राप्त हो गए थे। पड़ती ज़मीन और जंगलों पर सरदारों की पूर्ण सत्ता थी। इससे दास्य

स्थिति प्राप्त लोगों का फ़ायदा ही हुआ। सरदारों ने इन लोगों को ऊजड़ गावों में जा बसाया और खेती करने के लिए उन्हें ज़मीन दे दी। इन लोगों ने जंगल काट कर ज़मीन साफ़ की और तब उसे जोत कर खेती करने योग्य बनाया। इन सरदारों के प्रयत्न से शीघ्र ही इंगलैंड देश की अधिकांश परता ज़मीन पर खेती की जाने लगी।

अँगरेजी राज्य की स्थापना होने पर धीरे २ भारतवर्ष के ग्राम मंडल छिन्न भिन्न हो गए और तब सरकार ने रैयतवारी पद्धति की स्थापना की। तथापि राजपूताने में सैनिक सेवा पद्धति के अवशेष अब तक वर्तमान हैं राजपूताने के अधिकाँश जागीरदारों को प्रारम्भ में जागीरें इस शर्त पर दी गई थीं कि वे युद्ध में राजा का साथ दें आधुनिक काल में युद्धों की आशंका मिट जाने के कारण यह नियम ढीला पड़ गया है। किन्तु अब भी जागीरदारों के भूमि वाहक भील मीणा आदि उनकी चाकरी करते हैं। यह चाकरी और कुछ नहीं एक प्रकार की भूमि-करही है। सुना जाता है कि आज भी उदयपुर राज्य में भील मीणा आदि जंगली

जातियाँ हैं जिन्हें भूमि कर बिलकुल नहीं देना पड़ता। युद्ध छिड़ जाने पर तीर कमान ले कर अपने स्वामी की सहायता करना ही ये जानते हैं और वे सैनिक सेवा के रूप में ही भूमि कर चुकाते हैं।

छठवां परिच्छेद ।
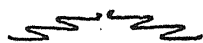
भूमि का मूल्य और भूमि कर ।

प्राच्य देशों में कहीं २ अब भी ग्राम संस्थाओं का अस्तित्व पाया जाता है। परन्तु उनकी रचना सादी नहीं। कई स्थानों पर तो ग्राम संस्था एक ही वंश के कई कुटुम्बों के मिल जाने से बनी हुई पाई जाती है और कहीं स्वतंत्र कुटुम्बों के योग से बनी हुई। कहीं २ बड़े समाज के अवयव के रूप में भी ये पाई जाती हैं। ग्राम संस्थाएं किसी रूप में क्यों न पाई जांय, किन्तु उसकी रचना परिपूर्ण हैं। खेती ही इन संस्थाओं का मुख्य धंघा था और इस धंधे को लगने वाला सब आवश्यक सामान प्रत्येक मंडल के पास मौजूद रहता था। अतएव उन्हें दूसरों पर अवलम्बित रहने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी ग्राम मंडलों में खेतीहरों की संख्या ही अधिक रहती थी तथापि लोगों के सुख और सुभीते के लिए लगने वाली

जरूरी चीजों को बनाने वाले कुटुम्ब भी ग्राम मंडलों में रहते थे। प्रत्येक गांव में एक चौकीदार नियुक्त रहता था और टंटे बखेड़े तोड़ने और गांव का बन्दोवस्त रखने के लिए एक अधिकारी रहा करता था।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने से भारतवर्ष के ग्राम मंडलों की संकीर्णता नजर आ जाती है। प्रत्येक मंडल में कभी २ अनेक पक्ष पाए जाते हैं। कहीं २ हिन्दू मुसलमानों के समान भिन्न वर्णों के लोग भी एक ही ग्राम मंडल में पाए जाते हैं और ऊपर ही ऊपर देखने वाले को मालूम होता है कि वे एक जीव हो गए हैं। परन्तु यह कृत्रिम संयोग छिपा नहीं रह सकता। भिन्न २ वर्णों के लोग गांव के भिन्न २ भागों में रहते हैं तथापि ज्ञाति रूपस्तरों के कारण उनके अनेक विभाग हो गए हैं। इन सब विभागों पर ग्राम संस्थापकों के कुटुम्ब का अधिकार रहता है। गांव बसाने वाले पुरुष के वंशज कुटुम्बों के बाद उन कुटुम्बों का नम्बर आता है जो भिन्न वर्गों में विभक्त होते हैं। इन कुटुम्बों के पारस्परिक सम्बंध का पता लगाना जरा कठिन है और रूढ़ी द्वारा इस प्रश्न

का हल करना भी संभव नहीं । कारण ग्राम मंडलों के समान प्राचीन व्यवस्थित समाज में रूढ़ी कई वर्षों तक बनी रहती है तो भी लोगों का आचरण रूढ़ी के अनुसार नहीं होता । ये रूढ़ियां बाप द्वारा बेटे को मिलती रही हैं और यही कारण है कि उन पर विश्वास कर लेना योग्य नहीं । मंडल के प्रत्येक वर्ग के कुटुम्बों को श्रेष्ठ वर्ग के कुटुम्बों को मान देना पड़ता था । कभी २ उन्हें द्रव्य के रूप में नजर आदि देकर ही यह मान व्यक्त करना पड़ता था । तथापि प्रत्येक वर्ग को अपने से श्रेष्ठ वर्ग को द्रव्य के रूप में नजर देने का नियम अस्तित्व में न था । और इसका कारण भी है । उस जमाने में जीवन कलह की समस्या बड़ी जटिल थी । जीवन कलह का बोझ बटाने के लिए ग्राम मंडलों को बाहरी लोग अपने में मिलाना पड़ते थे । भारत वासियों को अपनी रक्षा के लिए अनिश्चि और दुरतिक्रम्य भौतिक शक्तियों का सामना करना पड़ता था । मजदूरों की कमी थी । अतएव जितने अधिक लोग मिलें, उन सब के कठिन परिश्रम करने पर ही मंडल के निर्वाहार्थ काफी अनाज पैदा किया जा सकता था । इसी लिए जितने ज्यादा लोग गांव

में आ बसते थे उतनों की जरूरत भी होती थी और यही कारण है कि विजातीय लोग भी मंडल में शामिल कर लिये जाते थे। धीरे धीरे यह प्रथा बन्द होगई और तब ग्राम मंडल को परिमित समूह का स्वरूप प्राप्त हो गया। यह स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद जो मनुष्य गांव में आकर बसता था उसे गांव की जमीन का उपयोग करने के लिये भाड़ा देना पड़ता था। यह भाड़ा द्रव्य के रूप में या चाकरी के रूप में ही देना पड़ता था। अति प्राचीन काल में भूमि कर वसूल किया जाता था या नहीं इसके प्रमाण नहीं मिले हैं। महाराज मनु ने भूमि कर की दर के सम्बन्ध में लिखा है।

पंचाशद्भाग आदेयो, राज्ञा पशु हिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एववा॥

इस श्लोक का मतलब यह है कि पशु और द्रव्य का पचासवां भाग करके रूप में लिया जाय। भूमि कर की दर जमीन की पैदावार पर ही निर्भर करती थी। यदि पैदावार अच्छी होती थी, तो राजा उपज का छटा भाग करके रूप

में ले लेता था। और कम उपज होने पर पैदावार का आठवां या बारहवां भाग ।

उक्त श्लोक से यह भी सिद्ध होता है कि भूमि कर जिन्स के रूप में ही वसूल किया जाता था। भूमि वाहक अपनी २ भूमि का कर कोठारों में जमा करा देते थे। और वाणिक लोग इस माल को खरीद लेते थे।

पठान आदि मुसलमान बादशाह पैदावार का एक बड़ा भाग कर के रूप में ले लेते थे, जिससे बिचारे भूमिवाहकों को साल के अधिकांश दिन आधे पेट रहना पड़ता था।

मोगल साम्राज्य के जमाने में भूमिकर ज़िमीदारों के मार्फत वसूल किया जाता था। ज़िमीदार कर वसूल कर पोतदार द्वारा सरकारी खजाने में जमा करा देते थे। ये ज़िमीदार कर वसूल करते समय प्रजा पर खूब अत्याचार करते एवं उन्हें लूट कर अपना घर भरने में तनिक भी नहीं शरमाते थे। मुसलमान, मराठे, सिख आदि के जमाने में भी यही हाल था। उस जमाने में ऐन जिन्सी कर वसूल करने की प्रथा ही जारी थी। सम्राट् अकबर ने नगदी वसूली की पद्धति प्रारम्भ करने की कोशिश की थी। उसकी आज्ञा से

टोडरमल ने जमीन की नपती कर भूमि कर निश्चित किया था । तथापि नगदी वसूली की पद्धति सुभीता जनक सिद्ध न होने से ऐन जिन्सी या सिक्के के रूप में कर देने की बात कृषक की इच्छा पर छोड़ दी गई । परन्तु गन्ने की खेती करने वालों को भूमि कर सिक्के के रूप में ही देना पड़ता था ।

टॉड साहब ने अपने राजस्थान नामक महद् ग्रन्थ में राजपूताने की भूमि कर पर विचार किया है । मेवाड़ राज्य के कर के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि मेवाड़ में दो प्रकार के भूमि कर वसूल किये जाते थे—१ कंकूट और २ भुट्टाई । गन्ना, पोस्त, सरसों, कपास, नील और बगीचों में पैदा हुये फल मूलादि बोए जाने वाली जमीन का महसूल प्रतिबीघा २) रुपया से लगाकर छह रुपया तक लिया जाता था । फसल कटने के पहले, खेत का मालिक, पटेल, पटवारी और राजकर्मचारी फसल को अपनी आंखों से देखकर अन्दाज से कर निश्चित करते थे । यह कंकूट नामक कर ठीक ही होता था । तथापि यदि मालिक इसे अधिक सम–

भरता था, तो वह भट्टाई के लिये प्रार्थना करता था । ऐसी अवस्था में नाज काटने पर मंडाई कर पैदावार का २/६ या १/२ भाग करके रूप में देना होता था । तथापि हेमन्तिक धान्य का आधा भाग ही करके रूप में लेने की प्रथा थी । अस्तु ।

भारतवर्ष में सिक्के के रूप में कर लेने की प्रथा सबसे पहिले अँगरेज़ों ने चलाई । कर वसूल कर सरकारी ख़जाने में जमा कराने का काम ठेकेदारों को सौंपा गया । प्रत्येक ठेकेदार को अपने २ प्रान्त के लिए एक निश्चित रकम सरकारी खजाने में जमा कराना पड़ती थी । यह रकम प्रत्येक गाँव के पटेल और किसानों में बाँट कर वसूल की जाती थी । जमीन के मान के आधार पर ही कर की रकम ठहराई जाती थी । तदनन्तर जमीन नाप कर एवं उसकी उपजायु शक्ति देख कर कर निश्चित किया जाने लगा ।

बंगाल की जिमींदारी पद्धति से जिमींदारों और कृषकों को अच्छा लाभ हुआ है । और अनुभव से पाया गया है कि ज़िमींदार पद्धति हितकारक और सुखावह है । मध्यप्रान्त में मालगुजारी पद्धति प्रचलित है । गाँव तीस वर्ष के लिए

दिए गए हैं प्रति ३०वें वर्ष सरकार भूमिकर बढ़ा सकती है। इस पद्धति से भूमिवाहकों को बहुत ही कम लाभ हुआ है। सरकार को जिमीदारी पद्धति पसन्द न आई। अतएव उसने दाक्षिण में रैयत वारी पद्धति प्रारम्भ की। परन्तु इस पद्धति से भी भारतीय किसानों की साम्पातिक अवस्था में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ।

आज कल भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त में सिक्के के रूप में ही कर वसूल किया जाता है। जमीन का महसूल दो किश्तों में वसूल किये जाने की प्रथा है। कहीं २ ये किश्तें ऐसे समय में पड़ती हैं कि किसान बिना कर्ज लिए तौजी ही जमा नहीं करा सकते। कारण कि फसल तैयार होने के पहले ही किश्त जमा करानी पड़ती है किसानों के कर्ज के गहरे कीचड़ में फँसने का यह भी एक कारण है इस संबंध में यहाँ अधिक लिखना अप्रासंगिक है अतएव हम इस विषय को यहीं छोड़ कर अपने मुख्य विषय की ओर झुकते हैं।

भारत वासियों के मन मे इस बात ने जड़ पकड़ ली है कि प्रजा ही जमीन की मालिक है। अति प्राचीन काल से

यह नियम सा चला आ रहा है कि दो ग्राम मंडलों या जनसंघों में से किसी एक को ही किसी एक प्रदेश का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त रहता था। किसी कारण वश एक आध लोक समूह को अपना मूल स्थान छोड़ कर अन्यत्र जाना पड़ता था। कई पुश्तों तक इस लोक समूह में अपने मूल स्थान की रूढ़ियाँ प्रचलित रहती थीं। परन्तु सम्भवतः उन्हें यह स्पष्ट कल्पना न थी कि एक ही मंडल के भिन्न २ दरजे के लोगों के हक एक दूसरे पर कहाँ तक अवलम्बित रहना चाहिए। भारतवर्ष में कर वसूली का प्रश्न कुछ जटिल है। यह बात निश्चय पूर्वक नहीं कही जा सकती कि यहाँ कर देने की रूढ़ी प्रचार में थी या नहीं। तथापि इतनी बात तो निश्चय पूर्वक कही जा सकती है कि अँगरेजी राज्य की स्थापना होने के पहले जमीन उपयोग करने के बदले में सरकारी कर के अलावा जमीन के मालिक को किसी भी रूप में कर देने की प्रथा न थी। यदि देना भी पड़ता रहा होगा तो जमीन की कीमत की कमी बेशी के अनुसार यह कर की रकम भी कम ज्यादा होती रही होगी, सो नहीं। कारण इस सम्बन्धी स्पष्ट रूढ़ी प्रचार में नहीं है। अँगरेजी राज्य के पहले, अन्य

वस्तुओं के समान,प्रसंगानुसार जमीन की कीमत में कमी बेशी होने के लिए जिस प्रकार की लोकस्थित का होना जरूरी है उस से बिलकुल भिन्न प्रकार की लोकस्थित भारतवर्ष में पाई जाती है। मुख्य प्रश्न हल करने के लिए हमें काल्पनिक बातों पर ही विश्वास कर लेना पड़ेगा। हमें मान लेना पड़ेगा। कि पूर्वकाल में भूमि का क्रय विक्रय होता था और किसान अपने निज के पास से जमीन के मालिक को भूमिकर दिया करता था। यदि यह मानलें तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किस रूप में? और यही मुख्य प्रश्न है। अँगरेज सरकार ने इस प्रश्न को हल करने का भार अपने अधिकारियों को सौंपा,यह बहुत ही बुरा किया यह बात सच है कि हिन्दुस्तान का शासन भारतवासियों के आचार विचार के अनुसार किया जाना इष्ट है। परन्तु अधिक स्पष्ट प्रमाणों के उपलब्ध न होने के कारण उपीरनिदिष्ट महत्व के प्रश्न को हल करने के लिए उपयुक्ति दो काल्पनिक बातों में से किसी एक के अनुसार राज्य शकट चलाना ही न्यायसंगत और योग्य मार्ग है, यह बात सर्वानुमति से निश्चय हो गई। ऐसे आनी बानी के प्रसंग पर

यदि अधिकारी वर्ग इस व्यावहारिक प्रश्न का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार न कर अर्थशास्त्र के एक आद्य सिद्धान्त के अनुसार व्यवस्था करते और राजकीय दृष्टि से नुकसान नजर आने तक उसे रहने देते, तो बहुत ही अच्छा होता। अस्तु कानून के भूतकालीन इतिहास का अध्ययन करने वालों के लिए यह प्रश्न बड़े महत्व का है। यद्यपि कानून बनाने वाले लोगों ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है, तथापि इस पुस्तक में इसका निर्णय करना अत्यन्त इष्ट है।

लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल प्रांत में स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) की नींव डाली। परन्तु साठ वर्ष के अनुभव के बाद सब अधिकारियों को यह अ-व्यवस्थित सी मालूम होने लगी और तब उनके मगज में प्रकाश पड़ा कि इस देश में भूमि का मालिक एक ही व्यक्ति नहीं है। वरन ग्राम मंडल ही जमीन की मालिक है। परन्तु इसी समय उनके सामने यह भी एक प्रश्न था कि भूमि कर की व्यवस्था किस प्रकार की जाय? कहीं २ कई गांवों का एक स्वतन्त्र मालिक मान लिया गया परन्तु उन गांवों ने

उसका स्वामित्व स्वीकार नहीं किया । ग्राम मंडलों में भी भूमि विषयक अधिकार भेद के कारण एक के ऊपर एक छोटे २ वर्गों की परम्परा लग गई थी । इस जटिल प्रश्न का निर्णय करने के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के दो ही मार्ग थे । पहला मार्ग था भारतवर्ष का प्राचीन व्यवस्था का निरीक्षण करना । परन्तु यह काम अधिक प्रयास का था । इंगलैण्ड के भूस्वत्व पर से भारतवर्ष की स्थिति का अनुमान करना ही दूसरा मार्ग था । इंगलैण्ड में यह पद्धति अति प्राचीन काल से प्रचालित है, इतना ही नहीं, वरन वह एक प्रकार से अनुल्लंघनीय सी हो गई है ऐसा तत्कालीन कायदे पण्डितों को विश्वास हो गया था और यही कारण है कि उनके प्रयत्न की दिशा कुछ चूक सी गई है । सम्पति शास्त्रकारों ने भूमि कर के सम्बन्ध में कई भ्रान्तिकारक और संदिग्ध शब्दों का उपयोग किया है । और ऊपर लिखी हुई गलती करने का यह भी एक कारण माना जा सकता है । अर्थ शास्त्रकारों ने निश्चित कर देने तथा चढ़ा ऊपरी के कारण कभी वैसा होने वाले कर देने के नियमों में का भेद स्पष्ट शब्दों में बता दिया था । इसी तरह उन्होंने

यह बात भी स्वीकार करली होती कि निश्चित कर देने की प्रथा ही ज़्यादा प्रचलित थी । और इतिहास पर से भी यही बात सिद्ध होती है । परन्तु शब्दविपर्यास के कारण उनके मन में यह बात जमसी गई थी कि रूढ़ी की अपेक्षा चढ़ा ऊपरी के कारण ठहरा हुआ भाड़ा देने की पद्धति ही सृष्टि नियम के अनुकूल है । और यही कारण है कि उन्होंने इस चढ़ा ऊपरी के भाड़े को ही 'कर' संज्ञा देदी । इस नाम विपर्यास के कारण इंगलेंण्ड में ज़्यादा गड़बड़ी नहीं फैल सकती, परन्तु भारतवर्ष देश में 'कर' के समान व्यापक शब्द का अस्थान पर उपयोग करने से गड़बड़ घोटाला हो जाना एक साधारण बात है । अंगरेजों को भारतवर्ष में आने पर कई ऐसी बातें जरूर ही नजर आइ होंगी जिन से उन्हें यह मालूम हो गया होगा कि इंगलैण्ड के समान भारत वर्ष में जिमींदार और भूमिवाहक नहीं हैं । ऐसी दशा में उन्हें यह अधिकार न था कि वे बिना सोचे बिचारे ही यह बात बक देते कि हिन्दुस्तान में एक ही वर्ग जमीन का मालिक है । और किसान उसे जमीन का उपयोग करने के बदले में मुँह मांगा भाड़ा देकर उसके अधीन रहते हैं । उन्होंने यह मान

लिया कि जिसके पास सब से ज्यादा जमीन है वही जमीन का मालिक है चाहे फिर वह उसी गांव का रहने वाला हो या दूसरे गांव का। इसके अलावा उन्होंने यह भी कल्पना करली कि अधिकांश भूमि वाहक स्थायी नहीं हैं, वे चाहे जब वे दखल किए जा सकते हैं।

अंगरेजी राज्य के पहले एक निश्चित काल तक जमीन के, किसी किसान या उसके वंशजों के अधिकार में रह जाने पर उसे उस जमीन सम्बन्धी कुछ हक प्राप्त हो जाते थे। और तब मालिक उसे न तो बेदखल ही कर सकता था और न उससे मुंहमांगा कर ही वसूल कर सकता था। अंगरेजी सरकार ने नियम बनाकर यह नियम सर्वत्र लागू किया है। यह मुद्दत बारह वर्ष की निर्धारित की गई है।

इस नियम के विरुद्ध खूब आन्दोलन उठा। ग्राम मंडल की अन्तर्गत व्यवस्था का निरीक्षण करने से यह नहीं सिद्ध होता कि निश्चित समय व्यतीत होजाने पर उनमें के एक वर्ग को दूसरे वर्ग की अपेक्षा ज़्यादा हक़ प्राप्त होजाते थे। अतएव केवल इंगलैंड की स्थिति को देख कर भारतवर्ष

के सम्बन्ध में अनुमान निकालना सर्वथैव अनुचित है। कारण कि भारतवर्ष में ग्राम मंडल ही जमीन के मालिक हैं और उनके अनुरोध से सब व्यक्तियों को कम ज़्यादा हक बांट दिये जाते थे। परन्तु इंगलैण्ड में यह बात बिलकुल नहीं पाई जाती। वहां मानर की व्यवस्था का अन्त हो जाने पर जिन सरदारों के अधिकार में जमीन चली गई थी उन्हें ही भूमि स्वाभित्व प्राप्त होगया था तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि प्राचीनकाल से जो दो व्यवस्थायें बिलकुल भिन्न थीं, उनमें साम्य पाया जाय? कई विद्वान हमारे इस कथन से सहमत तो हैं किन्तु वे ग्रामवासियों से जाकर पूछते हैं कि किसान को बेदखल करने, मुंह मांगा भूमि कर वसूल करने और इसी प्रकार के रैयत और जिमीदार के पारस्परिक अन्य व्यवहारों को चलाने के लिये कौन कौन सी रूढ़ियां अस्तित्व में हैं परन्तु भारतवर्ष में जब किसान को बेदखल करने और भूमिकर देने की प्रथा ही न थी तब तत्सम्बन्धी रूढ़ियों का प्रचलित होना कैसे सम्भवनीय हो सकता है? प्राचीन कानूनों में भी इस प्रकार के नियम नहीं पाये जाते। आयर्लैण्ड के प्राचीन कायदे में एक स्थान पर

लिखा है कि भूमिकर तीन प्रकार के होते हैं—१ दूसरी जाति के लोगों से लिया जाने वाला कर २ स्वजातियों से लिया जाने वाला कर, और ३ निश्चित कर अर्थात् स्वजातियों और विजातियों से बराबर बराबर लिया जाने वाला कर।

पूर्व और पश्चिम के ग्राम मंडलों की अपेक्षा आयरिश टोली कुछ बड़ी थी। और उसकी रचना व्यवस्थित भी न थी। गुलामों के समान नीचस्थिति के लोगों का भी उसमें समावेश किया हुआ पाया जाता है जहा कुछ भी नियम न हो वहाँ मालिक उतना ही भाड़ा वसूल करता था जितना भाड़ा लोगों की दृष्टि में ठीक जचता था। और यह भाड़ा रूढ़ी द्वारा ठहराया जाता था। इन टोलियों की रचना सामिश्र थी अतएव भिन्न २ टोलिया की एक ही समुदाय में समावेश करने के लिए आयरिश जनसंघ को अनेक कल्पनाएँ करनी पड़ी थीं। ऐसे मनुष्य का मिलना करीब २ असम्भव ही था जिसका एक न एक टोली से सम्बन्ध न हो। और जनसंघ की एक भी टोली से सम्बन्ध न रखने वाले व्यक्ति के जमीन

माँगने के लिए आने पर ही मुँह माँगा भाड़ा वसूल करने का मौका मिलता था। एवं ऐसी कड़ी शर्तों को बहुत ही कम लोग मंजूर करते थे।

प्रति योगिता के कारण चढ़े हुए भाड़े को अँगरेजी में 'रैक रेंट' (Rack rent) कहते हैं। परन्तु यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिए कि आधुनिक काल में अर्थशास्त्र की दृष्टि से हमारे मन में जितनी कल्पनाएँ उठती हैं उनका अति प्राचीन काल में बिलकुल अभाव था। प्राचीन काल में वही मनुष्य कड़ी शर्तों पर समूह में शामिल होने के लिए तैयार होता था जो अन्य किसी समूह के आकर बस जाने के कारण निराधार हो जाता था। इस प्रकार संघ में शामिल होने वाले व्यक्ति को मंडल के व्यक्ति के हक प्राप्त नहीं होते थे और वह एक प्रकार से दास बन कर ही मंडल में रहता था। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि किस अवस्था में मुँह माँगा भूमि कर वसूल किया जा सकता था। हमारा यह मत भूतकालीन देश स्थित पर विचार कर स्थापित किया हुआ एक अनुमान मात्र है।

इन प्राचीन कल्पनाओं का शोध एक और रीति से किया जा सकता है। हम सारांश में उस पर विचार करेंगे। कारण कि इससे अन्य भी कई प्रश्न अनायास ही हल हो जाँयगे। यहाँ यह बात जता देना अत्युत्तम होगा कि आधुनिक काल में रोमन क़ायदों का जितना अंश उपलब्ध है उस पर से यही अनुमान निकलता है कि प्राचीन काल में ज़मीन का क्रयविक्रय बहुत ही कम होता था। प्राचीन रोमन क़ायदों पर से यह भी मालूम होता है कि उस ज़माने में जंगम वस्तु उधार देने की प्रथा बिल्कुल अज्ञात थी। रोमन लोगों * के सब के सब प्राचीन करारनामे वस्तु-संबन्धी ही हैं और इन्हीं में उधार दिए हुए पदार्थों का भी समावेश किया गया है। प्राचीन काल में छोटे २ पदार्थ उधार देने

---

* रोमन लोगों के क़ायदों में वस्तु सम्बंधी करार (Real contracts) चार प्रकार के हैं इन में से दूसरे प्रकार में कॉमोडेटम (Com. modatum) उधार दी हुई चीजों का समावेश किया गया है। कोमोडेटम में एक यह भी नियम था कि उधार दी हुई वस्तु के बदले में कुछ नहीं लिया जाय। देखो जस्टिनियन का क़ायदा एवं सांडर साहब की टीका।

की रीति प्रचालित थी। और इसी पर से ये नियम बनाए गए थे परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि रोमन कायदों के समान परिपक्व कायदों के संग्रह में ये नियम विपुल पाए जाते हैं तथापि अंगरेजी कायदों में इनका प्रायः अभाव ही है। इसका कारण यह है कि आधुनिक काल में नित्योपयोगी पदार्थ पुष्कल मिलते हैं अतएव प्रत्येक व्यक्ति उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार खरीद सकता है जिस से दूसरे की वस्तु उधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती। और यही कारण है कि बिना बदला लिए उधार दी हुई वस्तु के लिए नियमों की जरूरत नहीं पड़ती।

स्पर्धा या चढ़ा ऊपरी के भाड़े के सम्बंध में अनेक कल्पनाएं उठती हैं। इन कल्पनाओं का पता लगाने के लिए धर्म शास्त्र के सफे उलटना एकदम निरर्थक है। यह बात निस्संदेह सच है कि प्राचीन काल में भूमि का क्रयविक्रय क्वचित ही होता था और वह शायद ही कभी भाड़े से दी जाती रही हो। तथापि उस जमाने में जंगम वस्तु का क्रयविक्रय अवश्य ही होता रहा होगा। जमीन

की कीमत संबन्धी कल्पना का उदय कब हुआ इस बात का पता लगाना अशक्य नहीं और प्राचीन काल में व्यापार या प्रति योगिता किस प्रकार चलती थी इस बात का पता लगाने के लिए यही एक मात्र साधन है। उसी प्रकार यदि जंगम वस्तु के विक्रय संबन्धी कुछ नियमों का पता चलगया तो वे चढ़ा ऊपरी के कारण ठहरे हुए जमीन के भाड़े को भी लागू किए जा सकते हैं। एम्पूशियो व्हेंडीशियो (Emptio venditio) अर्थात् मूल्य लेकर एक आध वस्तु बेचना और लोकेशियो कंडक्शियो (Locatio Conductio) अर्थात् एक आध वस्तु भाड़े से देना—नामक इकरारनामे के दो प्रकार रोमन लोगों में और पाए जाते हैं। इनके सम्बन्ध में रोमन पं० लिखते हैं कि ये दोनों एक ही हैं और एक के नियम दूसरे को लागू किए जा सकते हैं। तथापि यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि विक्री पत्र को—भाड़े चिट्ठी कहना अयोग्य है परन्तु भाड़े से दी हुई वस्तु को बेची हुई मान लेना गैरवाजिबी नहीं। केवल इतना ही याद रखना चाहिए कि इस प्रकार बेची हुई वस्तु थोड़े दिन के लिए बेची गई है, न कि हमेशा के लिए। और उस वस्तु की

कीमत एकदम नहीं वरन किश्तों में वसूल की जाती है। यह एक साधारण बात है किन्तु बड़े बड़े विद्वानों ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया है।

प्राचीनकाल में पदार्थों की कीमत किस प्रकार ठहराई जाती थी यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि बारीकी से निरीक्षण किया जाय तो मालूम हो जायगा कि पदार्थों का मूल्य रूढ़ी पर ही अवलम्बित रहता था प्राच्य देशों में, आधुनिक काल में भी देखा जाता है कि कई धन्धे के लोग नियमित मूल्य पर ही वस्तुएँ बेचते हैं। इंगलैंड आदि अन्य यूरोपीय देशों में भी प्राचीन काल में रूढ़ी द्वारा ठहराए हुए मूल्य पर ही वस्तुओं का क्रय विक्रय करने की प्रथा प्रचलित थी।

अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मुँह माँगे मूल्य पर पदार्थ बेचने की प्रथा किस प्रकार अस्तित्व में आई हमारी समझ से प्राचीन काल में यह नियम क्रय विक्रय के लिए ही लागू किया जाता था। किन्तु बाद में ज्यों २ लोगों में व्यापार सम्बन्धी कल्पनाएँ फैलने लगीं, त्यों २ इस नियम ने भी धीरे २ सर्वसाधारण नियम का रूप ग्रहण कर लिया

समाज रचना के साथ ही साथ प्राचीन काल के व्यापार मण्डी आदि का स्वरूप भी बदल गया है। प्राचीन मण्डी की कल्पना कराना हो तो कल्पना कीजिए कि एक विस्तीर्ण प्रदेश में अनेक स्वतन्त्र ग्राम मण्डल हैं। गांवों के चारों ओर उनकी मालकी के चरागाह हैं और मध्य भाग के खेतों को ग्रामवासी ही जोतते बोते हैं। जहां दो तीन २ गांव की सीमाएँ मिलती थीं, वहां कुछ सार्वजनिक ज़मीन छोड़ दी जाती थी और इसे ही बाज़ार, मण्डी या कसबा कहते थे। युद्ध के सिवा अन्य कामों के लिए आस पास के लोग यहां जमा होते थे और वे यहीं अपने २ गांव में पैदा हुआ अनाज या अन्य पदार्थों का परिवर्तन (अदला बदल) करते थे।

यहां बाजार या मंडी के सम्बंध में अधिक लिखना अप्रासंगिक न होगा स्थायी बाजारों की कल्पना प्राचीन नहीं। कहा जा सकता है कि मकान बांध कर दूकान लगाने की प्रथा नवीन है। विपणि, यव्यवीथि का आदि संस्कृत शब्दों पर से यह स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन काल में अधिकांश व्यापार खुले मैदान में या रास्ते के दोनों ओर दूकाने लगा कर ही किया जाता था। यह बाजार स्थायी

नहीं था । प्रतिदिन नियमित समय पर ही बाजार लगता था । कहीं कहीं साप्ताहिक या सप्ताह में दो बार बाजार लगते थे । भारतवर्ष के कई शहरों में सप्ताह में एक बार या दो बार बाजार लगते हैं और कहीं २ इस से भी अधिक बार । इंगलैंड जरमनी आदि यूरोपीय देशों के कई नगरों में साप्ताहिक बाजार लगते हैं । एवं उनकी व्यवस्था के लिए अलग नियम बनाए गए हैं । उसी प्रकार त्रैमासिक षटमासिक और वार्षिक बाजारों की भी कमी नहीं । तिवहार तीर्थ स्थान आदि के सम्बंध में भरने वाली यात्राएं भी प्रारंभ में अंशतः व्यापारिक तत्व पर ही अस्तित्व में आई होंगी । भारतवर्ष के प्रत्येक गांव में कम से कम एक मन्दिर तो अवश्य ही रहता है । कहीं २ इन देवालयों के पास भी बाजार लगते हैं । धीरे २ इन बाजारों के साथ ही साथ वहां कुछ कारखाने शुरू कर दिए जाते हैं और तब यह गांव बन जाता है । अन्य गांवों की अपेक्षा इन गांवों की रचना का स्वरूप कुछ भिन्न प्रकार का होता है अतएव इन्हें गंज, पेंठ कसबा आदि भिन्न २ नाम प्राप्त हो जाते हैं । कई प्राचीन शहरों में गंज, पेंठ तथा तत्रस्थ देवालयों

का अस्तित्व पाया जाता है। कहें तो कह सकते हैं कि इन कसबों का अस्तित्व होने पर प्राचीन कृषि युग समाप्त होगया एवं अर्वाचीन सभ्यता के युग की नींव पड़ी।

सर जान लबक ने अपने 'सभ्यता का इतिहास' नामक ग्रंथ में इन बाजारों और हाटों के सम्बंध बहुत कुछ लिखा है! आपका मत है कि रोमन लोगों के 'प्रीटर' के बनाए हुए 'जस जेंटियम'* अंशतः व्यावहारिक नियमों से ही उत्पन्न हुए हैं और कहा जा सकता है कि इस 'जस जेंटियम' से ही आधुनिक राष्ट्रीय कायदों की उत्पत्ति हुई है।

---

* ज्यों २ रोमन साम्राज्य का विस्तार होने लगा, त्यों २ अन्य राष्ट्रों से भी उसका सम्बन्ध होने लगा। रोमन कायदों में बहुत से ऐसे नियम थे जो पर राष्ट्रीयों को नहीं लगाए जा सकते थे। यदि ये नियम लगाए जाते तो अन्याय होता। यह अड़चन दूर करने के लिए 'जस जेंटियम' नामक राष्ट्रीय कायदा बनाया गया। यह 'प्रीटर' नामक मुख्याधिकारी के जाहिर नाम में प्रकाशित किया जाता था। बाद में यह राष्ट्रीय कायदा रोमन कायदे की एक शाखा माना जाने लगा। एवं प्राचीन रोमन कायदे को 'जस सिविली' अर्थात् शहर का कायदा नाम दिया गया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कसबा सार्व जनिक स्थान होता था, जहां आस पास के लोग इकट्ठे हो रूढ़ी के बन्धनों को न मान कर अपनी इच्छानुसार क्रय विक्रय करते थे। मुंह मांगे मोल पर पदार्थ बेचने की कल्पना सब से पहले यहीं अस्तित्व में आई होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। और यहीं से वह सारे संसार में फैली। कायदों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि इन वाणिज्य नियमों का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया। रोमन लोगों का 'जस जेंटियम' कायदा रोमन लोगों और दूसरे राष्ट्रों के लोगों के पारस्परिक व्यवहार को सरलता पूर्वक चलाने के लिए ही बनाया गया था तथापि कहा जा सकता है कि उसका अंशतः उद्देश व्यापार की सुभीता भी हो सकता है। आजकल के अंगरेजी न्यायालयों के फैसलों को देखने से यही मालूम होता है कि व्यापारियों के सुभीते की तरफ उनका ध्यान ज्यादा रहता है। इस प्रकार वाणिज्य व्यवहार सम्बंधी अनेकों नियम उपनियम बन गए हैं जिन से तद्विरोधी रूढ़ी आदि का धीरे धीरे ह्रास होता जा रहा है।

अर्वाचीन जन समाज की उत्पत्ति प्राचीन जन संघों से ही हुई है। इन नवीन जन संघों के लोग व्यापारिक तत्व पर आपस में लेन देन नहीं करते थे। अर्थ शास्त्र का यह एक सिद्धान्त है कि पदार्थ उतने ही अधिक मूल्य पर बेचे जावें, जितना अधिक मूल्य मिल सके। परन्तु एक ही जन संघ के लोग इस सिद्धान्त के अनुसार आपस में लेन देन कदापि नहीं करते थे। इस सिद्धान्त का उपयोग वहीं किया जाता था जहां भिन्न २ ग्राम मंडल के लोग जमा हो कर लेन देन करते थे। धीरे २ यह नियम मंडल में भी घुसने लगा। किन्तु जब तक लोग कुटुम्ब या जाति बंधन में आबद्ध रहेंगे, तब तक यह नियम सार्वत्रिक न हो सकेगा। इस नियम का प्रभुत्व वहीं नजर आता है, जहां प्राचीन समाज व्यवस्था समूल नष्ट होगई है। इस प्रकार कसबों और बाजारों में चलने वाले इस नियम ने धीरे २ सार्वजनिक रूप ग्रहण कर लिया और इस नियम ने ऐसी जड़ पकड़ी कि लोग समझने लगे कि मनुष्य स्वभाव का झुकाव उधर ही है। इसके कई कारण हैं। स्थानाभाव के कारण उन सब पर यहां विचार नहीं किया जा सकता। तथापि

इतना कहा जा सकता है कि समाज के गृह बंधनों के ढीले पड़ जाने से व्यक्तिस्वातंत्र्य की वृद्धि होने लगी और यही कारण है कि अर्थशास्त्र का उपरिलिखित नियम सार्वत्रिक बन गया। प्राच्य देशों में भी इसी प्रकार का कारण दृष्टिगोचर होता है। धीरे २ प्राचीन काल के हाटों की व्यवस्था बंद होती गई और उस के स्थान पर आधुनिक पद्धति के बाजारों का जोर बढ़ने लगा। इस पद्धति के प्रारंभ होने पर व्यापारी लोग अपना माल ला ला कर हाट वाले गांवों के कोठों में भरते और बाजार भाव चढ़ने पर उसे बेच देते थे। परन्तु यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि वाणिज्य करने वाले ग्राम मंडल के अन्तर्गत नहीं माने जाते थे। भारतवर्ष के खेड़ों में, व्यापारी कितना ही धनवान और वजनदार क्यों न हो, किन्तु नीच से नीच धंधा करने वाले व्यक्ति को ग्राम सम्बंधी जितने हक प्राप्त होते हैं, उतने भी उसे प्राप्त नहीं होते। अकसर देखा जाता है कि जो लोग किसी एक वस्तु के लिए अधिक से अधिक मूल्य भी बड़ी खुशी से देने को तैयार हो जाते हैं, वेही किसी दूसरे पदार्थ के लिए निश्चित मूल्य से एक छदाम भी ज्यादा देने को

राजी नहीं होते। उदाहरणार्थ, भारत के भिन्न २ भागों से मंगाया हुआ अनाज और कपड़ा लोग ज्यादा से ज्यादा कीमत देकर भी राजी २ खरीद लेते हैं किन्तु गांव के मोची को जूते के निश्चित मूल्य से एक छदाम भी ज्यादा देने को आना कानी और घिस पिस करते हैं।

जंगम जायदाद को ज्यादा से ज्यादा कीमत पर बेचने की प्रथा प्रचार होने में बहुत लम्बा समय लगा। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि जमीन का अधिक से अधिक भाड़ा लेने की प्रथा उसके बाद की है। यह निस्सन्देह सच है कि अन्य वस्तुओं के मूल्य की तरह जमीन का भी मूल्य होता है और भाड़ा एक प्रकार से जमीन की कीमत ही है। परन्तु अर्थ शास्त्र के नियमानुसार भाड़े की दर बार २ बदलने की क्रिया बहुत समय बाद प्रचार में आई। कारण कि जंगम जायदाद पर वैयक्तिक स्वामित्व स्थापित होने के बहुत समय बाद भी लोगों की यह कल्पना ज्यों की त्यों बनी रही कि जमीन पर सर्व साधारण का ही अधिकार है। इतना ही नहीं किन्तु ग्राम मंडलों द्वारा बसाए हुए प्रदेशों में जमीन के कर

की दर का कमोबेशी होना इतना कम सम्भव है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में यह प्रथा प्रचलित थी, यह बात बिना काफी सबूत के मानी ही नहीं जा सकती। परन्तु इस सम्बन्ध में आज तक जितने सबूत मिले हैं, वे विलकुल कमजोर हैं। कुछ विशेष प्रकार के लोगों का इन ग्राम मंडलों से कम संबंध था। अँगरेजी राज्य के प्रभाव से प्राचीन काल की देश स्थिति बदल कर उसके स्थान पर नवीन मन्वन्तर प्रारम्भ हो गया और तब इन लोगों से चक्रा ऊपरी के तत्व पर ठहराया हुआ भूमि कर ही वसूल किया जाने लगा। इंगलैंड के प्राचीन स्वतंत्र कृषक समूहों के टूट जाने देश की साम्पात्तिक स्थिति बहुत ही गिर गई। और तब तत्रस्थ सरकार को दारिद्रता दूर करने के लिए चिन्तित होना पड़ा। परन्तु इंगलैंड की अपेक्षा भारतवर्ष के लिए इस जटिल प्रश्न का हल करना ज़्यादा कठिन है। कारण कि यहां पत्थर का कोयला कम मिलता है अतएव बड़े २ कारखाने स्थापित कर निरुद्यमी लोगों के पेट-पालन की व्यवस्था करना संभवनीय प्रतीत नहीं होता। इसके अलावा हिन्दुस्तान की औद्योगिक उन्नति के मार्ग

में एक और बड़ी भारी बाधा है। भारतवर्ष पर विदेशियों का राज्य है। ये विदेशी स्वार्थ वश हो भारत की औद्योगिक उन्नति के मार्ग में रोड़े बिछाते रहते हैं। संसार की प्रत्येक सरकार का यह एक पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने देश के उद्योग धंधों की तरक्की के लिए यत्नशील रहे। प्रजा के औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करना एवं साम्पत्तिक सहायता प्रदान कर छोटे २ उद्योग धंधों की तरक्की की व्यवस्था करना प्रत्येक सभ्य कहाने वाली सरकार के लिए परमावश्यक है। परन्तु हमारी अंगरेज सरकार किसी निराले उद्योग में ही मग्न है। उसका एकमात्र उद्देश्य भारतवर्ष के बाजारों को इंलैण्ड के बने माल से पाट देना ही है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश के लिए मुक्त व्यापार की प्रथा हानिकर ही नहीं वरन घातक भी है। परन्तु हमारी सरकार उसे ही भारत की उन्नति का एकमात्र साधन मानती है। वर्षों से भारतवासी इस प्रथा को उठा देने के लिए आन्दोलन कर रहे हैं किन्तु लोकमत का अनादर करने वाली हमारी दयालु सरकार के कर्ण कुहरों में इस आन्दोलन

की कुछ भी भनक न पड़ी और पड़ भी कैसे सकती है कारण इंगलैण्ड को सधन बनाने और वहां के माल को बेचने के लिए भारत के बाजार ही एकमात्र साधन हैं। इस पर से पाठकों को भले प्रकार ज्ञात हो जायगा कि विदेशी सरकार की स्वार्थ-पूर्ण नीति के कारण भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था का ठीक होना असंभव सा है।

विषयान्तर हो जाने के कारण पाठक क्षमा करें। अब हम अपने विषय की ओर झुकते हैं। सारांश में जमीन का अधिक से अधिक भाड़ा लेने की प्रथा व्यापारिक तत्वों के आधार पर ही अस्तित्व में आई है। इंगलैण्ड में भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि लोगों को अधिक से अधिक मूल्य पर जमीन बेचने का अधिकार किस प्रकार प्राप्त हुआ है और वहां यह प्रश्न इस आधार पर हल कर दिया कि इंगलैंड में अन्य पदार्थों की तरह जमीन भी बाजारों में खरीदी और बेची जाती थी। तथापि वहां यह नियम सर्वमान्य नहीं हैं। कहा जा सकता है कि जहां प्राचीन ग्राम मंडलों के नष्ट हो जाने पर अस्तित्व में आए हुए मानर अब तक किसी न किसी

रूप में वर्तमान हैं। वहां इस प्रथा का बिलकुल अभाव है। ऐसे स्थानों पर आज भी ग्राम वासियों में बन्धु भाव और स्वाभिमान मौजूद है और वे एक दूसरे से किसी पदार्थ की ज्यादा कीमत नहीं लेते। देहातों से आकर शहरों में बसे हुए लोगों को इसका अच्छा अनुभव होगा। भारतवर्ष के गांवों खेड़ों में आज भी हम इसका अनुभव करते हैं।

हमारे निरक्षर, मूर्ख और असभ्य माने जाने वाले देहाती भाइयों में प्रेम बन्धुत्व, दया, उदारता आदि गुण जितने अधिक परिमाण में पाए जाते हैं उसका हजारवाँ हिस्सा भी शहर वासियों में नहीं पाया जाता। सत्य प्रियता, सरलता, निष्कापट्य आदि गुण हमारे देहाती भाइयों में अत्यधिक परिणाम में पाए जाते हैं। परन्तु शहरवासियों में दग़ाबाज़ी, झूठ और कपट पद २ पर नजर आते हैं।

परिशिष्ट—क

प्राचीन स्वत्व पद्धति को अलोडियल (alodial) संज्ञा दी गई थी। नवीं सदी में उस पर वाह्य परिस्थिति का प्रभाव पड़ने लगा और बारहवीं सदी में वह फ्यूडल (feudal) में परिवर्तित होगई। अलोडियल नाम पर से प्राचीन पद्धति की दो विशेषतायें ध्वनित होती हैं:—प्रथम, भूमिवाहक का भूमिपर पूर्ण स्वामित्व और उसका वंश परम्परागतत्व। इसके अलावा यह भी नियम था कि पिता की मृत्यु के बाद आलोडियल वर्ग की जायदाद उसकी सन्तति में बराबर बराबर बांट दी जाती थी। परन्तु फ्यूडल वर्ग की जमीन को ये नियम लागू नहीं होते थे। फ्यूडल पद्धति के अनुसार जो किसान जमीन हांकता जोतता था, वह एक जमीन के मालिक का एक प्रकार का गुलाम होता था। और जमीन का उपयोग करने के बदले में उसे युद्ध के समय मालिक की सेना के साथ लड़ना पड़ता था। कभी कभी द्रव्य के रूप में भी भूमिकर देना पड़ता था। उसी प्रकार उसे मालिक को भेंट नज़रें आदि भी देना पड़ता था। प्रारम्भ में फ्यूडल

वर्ग की जमीन पर भूमि वाहक का व्यक्तिगत अधिकार रहता था। तथापि बाद में यह भूमि स्वामित्व वंश परम्परा के लिये स्थापित होगया। अलोडियल पद्धति का रूपान्तर होकर उसे फ्यूडल पद्धति का रूप ग्रहण करने में चार सदी लगीं। फ्यूडल सिस्टम की स्थापना होने के मुख्य तीन कारण हैं। १ बेनिफिस (benefices) अर्थात् जागीर देने की पद्धति, २ ड्यूक कौंट आदि को छोटे छोटे प्रान्तों पर स्वतन्त्र अधिकार चलाने का हक़ और राजसत्ता की निर्बलता, ३ देश की अशान्ति और गरीब किसानों के हक़ों का कुचला जाना। फ्रांस और जरमनी में इन तीनों का खूब ज़ोर था परन्तु इंगलैंड, इटली और स्पेन में इनका उतना ज़ोर नहीं था। और यही कारण है कि इन देशों में फ्यूडल सिस्टम न्यूनाधिक परिमाण में जड़ पकड़ सकी। इसके अलावा रोमन कायदे और मुख्यतः 'एम्फिटयूसिस' (Eumphyteusis) नामक स्वत्वपद्धति, जोकि रोमन लोगों में प्रचलित थी, फ्यूडल सिस्टम (सैनिक सेवा पद्धति) की जड़ जमाने को कारणीभूत हुई। कारण कि इन दोनों में पुष्कल साम्य है। और यह अनुमान किया जा सकता है

कि रोमन लोगों की 'एम्फिटयूसिस' पद्धति को देख कर ही मध्य युग के सरदारों ने सैनिक सेवा पद्धति की स्थापना की थी। फ्यूडेलिस्म नाम से यूरोप खण्ड की मध्ययुगीन एक एक विशेष प्रकार की समाज व्यवस्था का बोध होता है अतएव उसके सब अंगों पर विचार करना अशक्य और अनावश्यक है। और इस परिवर्तन की आधार भूत भूमि-स्वत्वपद्धति का दिग्दर्शन ऊपर करा ही चुके हैं। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये Hallanis Middle Ages, ch II. एवं Maine's Ancient Law ch. VII & VIII पढिये। तेरहवीं सदी में फ्यूडल सिस्टम स्थापित हुई और तभी से उसका ह्रास होने लगा। देश में शान्ति छागई। राजसत्ता बढ गई। व्यापार की वृद्धि होगई और बड़े बड़े शहरों को नवीन हक मिल गये जिससे सरदारों का महत्व घट गया और सैनिक सेवा पद्धति (फ्यूडल सिस्टम का ह्रास प्रारम्भ होगया। तथापि सन् १७८९ तक वह किसी प्रकार बनी रही। किन्तु इसी साल फ्रांस में प्रचण्ड राजक्रान्ति हुई जिससे प्राचीन समाज व्यवस्था नष्ट होगई और नवीन मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ।

परिशिष्ट—ख०

फ्यूडल सिस्टम से ही सोकेज (Socage) की उत्पति हुई । सोकेज शब्द सांक (Soc) अर्थात हल शब्द से बना है। भूमि वाहकों को जमीन के मालिक को कृषि रूप में या धान्यांश के रूप में भूमि कर देना पड़ता था । और यह धन्यांश निश्चित और कम थी । यही कारण है कि यह पद्धति लोक प्रिय होती चली और धीरे २ उसका प्रभाव बढ़ने लगा । अन्त में दूसरे चार्ल्स राजा ने सैनिक सेवा पद्धति को बंद कर सोकेज पद्धति जारी की ।

परिशिष्ट—ग

Absolute Ownership—अनियंत्रित स्वामित्व ।

Accessio—वृद्धि, रोमन कायदों में वर्णित एक प्रकार का धनार्जन का साधन ।

Canon Law—ईसाई धर्मशास्त्र ।

Common—सार्वजनिक भूमि ।

Community—मंडल ।

Fallow—पड़ती जमीन ।

Feudalisen—सैनिक सेवापद्धति ।

Frank-pledge—स्वामिभक्ति की शपथ ।

Land Law—जमीन सम्बन्धी कायदा ।

Land-Lord—जिमींदार ।

Law, Customary—रूढ़ि कायदा, आचार नियम ।

Manor—एक जिमींदार के अधिकार में के गांव ।

Manorial group—मानर के जनसंघ ।

Mark—गांव की जमीन ।

Meadow-land—चरागाह ।

Middle Ages—मध्ययुग—दसवीं सदी से सोलहवीं सदी के अन्त तक का काल ।

Monogamy—एक पत्नित्व।

Occupant—भूमिवाहक।

Parish—गांव या कृषक समूह।

Pasture—चरणोई।

Patriarchal Family—एकाधिकृत कुटुम्ब व्यवस्था।

Patria Potestas—पित्राधिकार।

Polyandry—बहु पतित्व।

Polygyanry / Polygyny — बहुपत्नित्व।

Predial Condition Or Servitude — दास्यास्थिति।

Prize of War—युद्ध की लूट।

Promiscuity—वैवाहिक निर्बन्धाभाव।

Property—स्वत्व, जायदाद।

Property, Individual—व्यक्ति स्वामित्व।

Property Joint—संयुक्त स्वामित्व

Rent—भाड़ा या कर।

Revenue—वसूल, आय।

Revenue in kind—ऐनजिन्सी वसूल।

Revenue in money—नगदी वसूल, सिक्के के रूप में भूमि-कर।

Secredness—अनुल्लंघनीयता ।

Settlement—बंदोबस्त ।

Strip—भूमिखंड, टुकड़ा ।

Tenant—भूमिवाहक ।

Tenant at will—अस्थायी भूमिवाहक ।

Tenure—भूमिकी मालकी, स्वत्व प्रकार ।

Township—गांव ।

Tribe जाति, टोली ।

Unit of society—समाज घटकावयव, व्यक्ति ।

Vestige—अविशेष, चिन्ह ।

Village Community—ग्राममंडल ।

Village-land—गांव के अधिकार की भूमि ।

Village Officer—ग्राम भृत्य ।

Village property—गांव के संयुक्त स्वामित्व की भूमि ।

Waste—जंगल, पड़ती जमीन ।

शुद्धि—पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१३	अपने	अपनी
५	६	फर्क तो	फर्क
५	१७	पाई जाने वाली	पाये जाने वाले
५	१८	बातें	नातों
६	५	संयुक्तिक	सयुक्तिक
६	११	स्त्री पुरुष	स्त्री और पुरुष
१०	१६	प्रारम्भ से	प्रारम्भ में
११	१६	प्रथा विवर्धंते	प्रथग्विवर्धंते
११	२	वैश्य देवादि	वैश्वदेवादि
११	२	पुष्य	पुण्य
१४	४	स्वामित्व	भूमि स्वामित्व
१४	४	देने भूमि	देने
१४	१४	प्रति पादक	प्रति पादकं
१५	६	पाए जाते हैं	पाए गए हैं
१५	१६	उदापोह	उहापोह
१६	५	परस्थिति	परिस्थिति
२०	७	स्टेटों	इस्टेटों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	११	यदि	यह
२३	१३	तथाति	तथापि
२५	६	सब	तब
३१	११	भावों	भागों
३३	१४	खेती बाड़े	खेती बाड़ी
३५	१	सुधारता	सुधारना
३६	४	हुआ	हुई
३७	१२	लगाने	लगने
३८	१०	अविशेष	अवशेष
४१	६	पहले दी	पहले ही
४१	१५	स्वतन्त्र रूप	स्वतन्त्र रूप से
४२	१३	पुस्तक	पुस्तक में
४२	१४	प्राचीन में	प्राचीन
४४	७	समान प्रभुत्व	समान प्रभत्व
४४	११	दमन्	धमन्
४४	१२	दम्-दम्	दम् इसी
४४	१५	और पुरुष	और गृह
४७	३	साहश्य	सादृश्य
४७	५	तत्व सम्बन्धी	तत्सम्बन्धी
४८	४	Onws	Owns

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
४६	८	टाउ साहब	टाड साहब	७६
५०	६	सन १७१५	सन १७१५ में	७६
५२	१२	एक मत	ऐक्य मत	७६
५४	१३	Them	Than	६३
५४	१४	ensuient	eminent	६३
५६	७	कृशकों को	कृषकों की	६६
५७	३	तक पिता	तक कि पिता	१०२
५७	८	पारस्वरिक	पारस्परिक	१०४
६५	१०	सेवा में	सेना में	११३
६६	११	ग्रैंड उफ	ग्रैंड डफ	११३
६७	१	उफ	डफ	११३
७२	१७	नैमिषाख्य	नैमिषारण्य	११६
७३	१	चम्पकाख्य	चम्पकारण्य	११७
७३	४	अख्यादि	अरण्यादि	११८
७४	१७	करते	करने	११९
७५	६	प्राचोन रचना	प्राचीन संस्थाएं	१२६
७५	१०	राज्य वंस	राजवंश	१२८
७५	१३	अन्तर्व्यंवस्था नामक	अन्तर्व्यंवस्था	१२६
			पंचायत नामक	१३०
७६	६	जमाते	जमाने	१३१

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१२	पच इघ्न	पच इघ्न
७६	१०	मैग्नाचार्यो	मैग्नाचार्दो
७६	१३	स्वर्गीय	स्व वर्गीय
६३	८	बुधि	बुद्धि
६३	१२	निहिलिय	निहिलिज्म
६६	६	जात को	जाति के
१०२	१२	हेत	हेतु
१०४	६	पश्चमीय	पश्चिमीय
११३	६	अभिव्यक्ति	आद्य प्रतिनिधि
११३	८	काम ही कोर्ट	काम ही इसकोर्ट
११३	११	नियामत	नियामक
११६	८	प्रारंभ में कालिक	प्रारंभ कालीन
११७	४	लेते हैं	लेते थे
११८	७	स्थित्यिन्तर	स्थित्यन्तर
११९	४	व्यावहरिक	व्यावहारिक
१२६	१२	एक पक	एक ही
१२८	१२	ग्रहण लिया	ग्रहण कर लिया
१२६	५	यदि	याद
१३०	१५	योग उपयोगी	योग्य उपयोगी
१३१	१५	स्वतत्र	स्वतंत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध शुद्ध
१३३	६	परता	परती
१४४	२	लोकस्थित	लोकस्थिति
१४४	३	लोकस्थित	लोकस्थिति
१४४	१५	निद्दिष्ट	निर्द्दिष्ट
१४४	१५	उपयुक्ति	उपर्युक्ति
१४४	१७	निश्चय	निश्चित
१४५	६	प्रात	प्रान्त
१४६	५	भारतवर्षं का	भारतवर्ष की
१४६	१६	कभी वैसा	कमी बेशी
१४७	१२	आइ	आई
१४८	१७	कवल	केवल
१४६	१५	कैस	कैसे
१५०	१०	लागों	लोगों
१५०	१३	टोलिया की	टोलियों को
१५१	१६	देशस्थित	देश स्थिति
१५२	५	कायदों को	कायदों का
१५६	१५	यव्यवीथिका	पण्यवीथिका
१५७	१७	देतालयों	देवालयों
१५८	५	सम्बन्ध बहुत	सम्बन्ध में बहुत